सत्यार्थ प्रकाश दर्पण



युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती

दयानन्द

अद्वितीय ! महान् ! क्रान्तिकारी !
युग की परतन्त्रता
अज्ञान की पशुता
मोह की जड़ता
काटने में सफल ! मानव का रक्षक !
जन में समता का
मन में ममता का
प्रभु की प्रभुता का
प्रसारक, त्राता, रक्षक !
युग को जगा गया
कष्ट सब भगा गया
सूर्य को उगा गया
नवयुग का वाहक ! जीवनदाता !

*** **दयानन्द**

॥ ओ३म् ॥

सत्यार्थ प्रकाश दर्पण

महर्षि दयानन्द विरचित सत्यार्थ प्रकाश
का
संक्षिप्तरूप



सम्पादक :—

पण्डित वेदप्रकाश शास्त्री

एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत)
कैलाश नगर, फाजिलका (पंजाब)

द्वितीय संस्करण — एक हजार

मूल्य — 13.00

प्रकाशक—

डा० श्रीराम पथिक

मदनानन्द वानप्रस्थाश्रम,

नदी मार्ग, मुजफ्फरनगर-251 002 (उ०प्र०)

ए

व

म

आर्य साहित्य प्रकाशन,

4-E, कैलाश नगर,

फाजिलका-152 123 (पंजाब)

★

सम्पादक—

पंडित वेद प्रकाश शास्त्री, एम. ए.

★

विक्रमी संवत्	ईस्वीय सन्
मार्गशीर्ष, 2051	दिसम्बर, 1994

★

मूल्य- 13-00 रुपये

मुद्रक—

कुक्कड़ प्रिंटिंग प्रैस, राजा सिनेमा रोड,

फाजिलका - 152 123 (पंजाब)

☎ : 63242 P.P.

-: विषय सूची :-

आभार प्रदर्शन

श्री सुभाष चन्द्र जसूजा	250/-
„ शाम लाल आर्य	151/-
„ गुरांदित्ता राम जसूजा	101/-
„ डा० रोशन लाल ठक्कर	101/-
„ श्री हरिदेव भुसरी	100/-
„ श्री ओम् प्रकाश झांब	100/-
„ विनोद कुमार गुप्ता	51/-
„ महेन्द्र कुमार वर्मा	51/-
„ राकेश कुमार गुम्बर	51/-
श्रीमती सत्यावती डूमड़ा	51/-
„ अमरनाथ मलिक	51/-

सत्यार्थ प्रकाश दर्पण ही क्यों ?

युग प्रवर्तक, वेदोद्धारक, पाखण्ड-ढोंग-पोपलीला संहारक, विभिन्न मत मतान्तरों के निष्पक्ष एवं तर्कयुक्त समालोचक महर्षि दयानन्द ने धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझाने के लिए ही अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की रचना की थी। महर्षि के इस ग्रन्थ ने लोगों के विचारों में एक नई क्रान्ति ला दी। इसके अध्ययन के बाद जनमानस के विचारों में एक नया परिवर्तन आ गया। इसीलिए इस अमर ग्रन्थ को "वैचारिक क्रान्ति का अग्रदूत" कहते हैं। सत्यार्थप्रकाश रूपी सूर्य के प्रकाश के सम्मुख समस्त अवैदिक मतमतान्तर लुप्त हो जाते हैं।

महर्षि दयानन्द के इसी अमरग्रन्थ का संक्षित रूप है — "सत्यार्थ प्रकाश दर्पण"। यद्यपि आजकल बाल तथा महिला सत्यार्थ प्रकाश भी संक्षिप्त रूप में उपलब्ध हैं। जो कि व्याख्यान मात्र हैं। परन्तु यह ग्रन्थ उनसे नितान्त भिन्न है। क्योंकि इसके सम्पादन के समय ग्रन्थ की मौलिकता और भावग्रहण को बनाए रखा गया है। संक्षिप्त होते हुए भी समस्त प्रमुख विषय समाविष्ट हैं।

युग की मांग एवं मिशन के प्रचारार्थ जन-जन तक सत्यार्थ प्रकाश के मौलिक भावों को सरल, सुबोध एवं संक्षिप्त रूप में पहुंचाने के लिए "सत्यार्थ प्रकाश दर्पण" का सम्पादन आर्यसिद्धान्त मर्मज्ञ श्री पं० वेद प्रकाश शास्त्री, एम.ए., फाजिलका, पंजाब ने किया है।

मेरी बहुत समय से यह अभिलाषा थी कि सत्यार्थप्रकाश का एक ऐसा संक्षिप्त संस्करण तैयार किया जाए जिसे छात्र-छात्राएं एवं साधारण शिक्षित जन भी पूर्ण रूपेण हृदयंगम कर सकें। यदि यह ग्रन्थ मेरी इस अभिलाषा को पूर्ण करने में सफल सिद्ध हुआ तो मैं अपने एवं शास्त्री जी के परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

शुभेच्छु,
श्रीराम पथिक 'भिक्षु'

द्वितीय संस्करण

'सत्यार्थ प्रकाश दर्पण' का प्रथम संस्करण अत्यल्प समय में ही समाप्त हो जाना समस्त आर्यों द्वारा इसके प्रचार एवं प्रसार में पर्याप्त सहयोग का प्रतीक है। यदि वे इतना उत्साह न दिखाते तो द्वितीय संस्करण को प्रस्तुत करने का साहस करना मेरे जैसे व्यक्ति के लिए असम्भव ही था।

इस संस्करण में अनेक स्थलों पर महत्वपूर्ण परिवर्तन, संशोधन एवं संवर्धन किया गया है तथा अनावश्यक विषयों को हटा दिया गया है जिससे इस ग्रन्थ की उपादेयता में और बृद्धि हो सके।

श्री पथिक जी प्रथम संस्करण को रचना के लिए प्रेरणास्रोत तो थे ही, लेकिन इस द्वितीय संस्करण के लिए तो वे प्रेरणा के सागर ही बन गए।

यह संस्करण उनके कठिन परिश्रम, असीम लगन और अपार उत्साह का ही परिणाम है, वरना मेरे जैसा अल्प साधन एवं शक्ति वाला व्यक्ति इसके प्रकाशन में असमर्थ ही रहता। सीमित साधनों से असीमित कार्य के प्रति उत्साह एवं प्रयत्न करना आपका ही काम है। "चरैवेति चरैवेति" को सम्मुख रख कर अपने कर्त्तव्य पथ पर निरन्तर चलते रहने के कारण "पथिक" नाम को आपने सार्थक कर दिया है। अपने निश्चित पथ पर सतत आगे बढ़ते रहना ही आपका चरम लक्ष्य है।

परम पिता परमात्मा आपको और अधिक शक्ति, सामर्थ्य और अच्छा स्वास्थ्य प्रदान करे, जिससे आप यह ज्ञान की ज्योति निरन्तर जलाए रख सकें।

इस संस्करण के प्रकाशन में आर्थिक कठिनाई सुरसा की तरह मुंह बाये खड़ी थी। परन्तु इन विषम परिस्थितियों में भी श्री पथिक जी ने दानी महानुभावों से सहयोग लेकर एवं स्वयं अपनी ओर से बहुत बड़ी आहुति डालकर इस प्रकाशन के कार्य को सरल कर दिया। ऐसे उदारमना महाशयों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ।

आभार व्यक्त करते हुए —

विनीत -
वेदप्रकाश शास्त्री

★

ग्रन्थ परिचय

सत्य सत्य मार्ग पर चलना हमको, यही ग्रन्थ बताता है।
रूढ़ि आडम्बरों से लड़ना, यही ग्रन्थ सिखलाता है।।

अर्थ अर्थ है इसका सत्य इसी से, गूंज रहा जहान है।
रोशन करता है इस जग को, हर एक शब्द महान है।।

प्रकाश गूंज रहा है इसकी वाणी से, धरती और आकाश है।
सत्य का अर्थ बताता जग को, यही सत्यार्थ प्रकाश है।।

वैदिक उजियारा हो जाए

सत्यार्थ प्रकाश का पढ़ना गर, जन-जन को प्यारा हो जाए।
पढ़ कर के सभी अमल करें, वैदिक उजियारा हो जाए।।
फूले फुलवाड़ी वेदों की, हम बनें दयानन्द के माली।
सत्यार्थ प्रकाश पढ़ अमल करें, स्वर्ग सारा जग बन जाए।।

सत्यार्थ प्रकाश क्यों पढ़ें?

1. ईश्वर के सच्चे स्वरुप को जानने के लिए।
2 सन्तानों को सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए।
3. अन्धविश्बास और पाखण्डों को चुनौती देने के लिए।
4. वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के लिए।
5. गुणकर्मानुसार वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना के लिए।
6. शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के लिए।
7. राजधर्म के वास्तविक स्वरूप को समझने एवं सुदृढ़ प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए।
8. ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना को उचित विधि जा ने के लिए।
9. ईश्वर, जीव, प्रकृति, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के रहस्य को जानने के लिए।
10. बन्ध और मोक्ष विषय पर चिन्तन के लिए।
11. धर्म के सत्य स्वरूप एवं देश-देशान्तर में फैले मत-मतान्तरों की सच्चाई को जानने के लिए।
12. भारतीय सभ्यता-संस्कृति की महत्ता को समझने के लिए।
13. वैचारिक क्रान्ति के लिए।
14. मानव मात्र में प्रेम, सौहार्द, सहयोग, एकता, सद्विचार एवं सद्भावना उत्पन्न करने के लिए।
15. प्रबुद्ध, सजग, श्रेष्ठ परिवार, समाज एवं राष्ट्र की स्थापना के लिए सत्यार्थप्रकाश अवश्य पढ़ें। ★

सबके लिए सत्यार्थप्रकाश

आबालवृद्ध सभी के लिए सत्यार्थप्राश का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि —

1. यदि किशोर पढ़ेंगे तो उनके जीवन का मार्ग प्रशस्त होगा। उन्हें अपना शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास करने की प्रेरणा मिलेगी।
2. इसे तरुण पढ़ें ताकि इसमें निर्दिष्ट जीवनदिशा के द्वारा अपना भविष्य बना सकें।
3. प्रौढ़जन पढ़ें ताकि जीवन यापन करते समय व्यवहार में हो जाने वाली त्रुटियों तथा दोषों को जान कर अपना सुधार कर सकें।
4. वृद्धजन पढ़ें ताकि वर्तमान जीवन में अपनी बुद्धि, योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार अपने किए कर्मों का स्मरण कर आगामी जीवन को उत्तम बनाने का प्रयत्न करें।
5. ब्राह्मण एवं अध्यापकवर्ग पढ़ें ताकि उन्हें सच्ची शिक्षा एवं उपयोगी विद्या के उद्देश्य का ज्ञान हो सके और वे स्त्रीपुरुषों और छात्र-छात्राओं को बिना जाति, कुल मतभेद के समान रूप से धार्मिक विद्वान् बना सकें।
6. क्षत्रिय, सैनिक, राज्याधिकारी पढ़ें जिससे वे अपने कर्त्तव्यों का बोध प्राप्त कर राष्ट्र की अभिवृद्धि करें। साधुपरित्राण तथा दुष्टों का विनाश कर विश्व में मतविहीन धर्मराज्य की स्थापना कर सकें।
7. विभिन्न मतावलम्बी पढ़ें जिससे वे अपने-अपने मत के दोषों-त्रुटियों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकें।

इस प्रकार सभी पढ़ें ताकि वे समानता, स्वतन्त्रता तथा भ्रातृभाव की शिक्षा ग्रहण करके परस्पर मिलकर राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को बनाए रख सकें।

★

पांच हजार वर्ष से सोने वालो, जागो।

उसका नाम निहाल सिंह था और था एक सरकारी चौकीदार। एक बड़े कस्बे में उसका तबादला हुआ। रात को पहरा देते हुए वह यह आवाज़ लगाया करता था," पांच हज़ार वर्ष से सोने वालो, जागो ! "

इस नए स्थान पर भी उसने यही आवाज लगानी आरम्भ कर दी। वहां के लोग पहरेदारों की ' सोने वालो जागते रहो ' इस आवाज़ के अभ्यस्त थे। अतः इस नई आवाज़ से उन्हें बहुत आश्चर्य होता था। अनेक लोगों को इस आवाज़ का अर्थ जानने की उत्सुकता बढ़ी।

एक दिन एक डिप्टी कलक्टर ने निहाल सिंह को पास बुला कर पूछा, " तुम रात को पांच हज़ार वर्ष के सोने वालो, जागो ! यह आवाज़ क्यों लगाते हो ? "

निहाल सिंह ने उत्तर दिया, "मुझे दो रुपए दें तब इसका मतलब समझा दूंगा।" अफसर ने तत्काल जेब से दो रुपये निकाल कर निहाल सिंह के हाथ पर रख दिये। निहाल सिंह रुपये लेकर बिना कुछ कहे अपने घर चल दिया। जाते समय उसने कहा- "15-20 दिन के पश्चात् मैं आऊंगा और आपको मतलब समझा दूंगा, आप विश्वास रखें।" ★

चौकीदार के इस व्यवहार पर आश्चर्य होना स्वाभाविक था। अफसर को आश्चर्य हुआ परन्तु वह अपनी एक जिज्ञासा को सन्तुष्ट करना चाहते थे, अतः वे कुछ न बोले।

निहाल सिंह ने उसी दिन वे दो रुपये वैदिक यन्त्रालय अजमेर को मनी आर्डर से भेज कर लिखा कि "सत्यार्थ प्रकाश की एक जिल्द उस अफसर के पास भेज दी जाय।"

इस घटना को हुए बीस दिन हो गए थे। अफसर के पास सत्यार्थ प्रकाश पहुंच चुका था। सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ते ही वे खुद निहाल सिंह के मकान पर गए और उनको स्नेहालिंगन करके कहा-

"निहाल सिंह ! पांच हजार वर्ष के सोने वालो, जागो ! तुम्हारी इस आवाज़ का ठीक ठीक अर्थ मेरी समझ में आ गया है। तुम्हारे प्रचार का ढंग बड़ा निराला और बुद्धिमत्ता-पूर्ण है"

निहाल सिंह चुपचाप खड़े थे। कुछ क्षण के उपरान्त गद्‌गद स्वर में उन्होंने कहा, "हुजूर को मेरे पहरे की आवाज का अर्थ भली प्रकार समझ में आ गया है, इससे मुझे खुशी है। यदि संयोग से कोई भाई आपसे इसका अर्थ पूछने आ जाय तो कृपा करके आप भी मेरे उपाय का आश्रय लेवें, यही आपसे बिनती है।"

निहाल सिंह ने उसी अफसर के सहयोग से उस कस्बे में शीघ्र ही एक आर्य समाज स्थापित कर दिया और वह समाज आज भी एक सुदृढ़ और विशाल समाज बना हुआ है।

यह था सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन का प्रभाव ! अतः विस्तृत जानकारी के लिए बड़ा सत्यार्थ प्रकाश अवश्य पढ़ें।

★

सत्यार्थ प्रकाश गीत

(पं० सत्यपाल भजनोपदेशक)

गुरुडम लीला पनप रही है,
निशिदिन देखो आज यहां।
नाना मत पंथों में भटक रहा,
है मनुज समाज यहां।
बिलख रही है मानवता,
और दानवता रही गाज यहां॥

दिशाहीन जो बने आज,
उन्हें सन्मार्ग पर लाना है।
आज धरा से असत् अविद्या,
और अत्याचार मिटाना है।
सत्यार्थ प्रकाश ऋषि का,
हमें घर-घर में पहुंचाना है॥

अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश

(प्रो० बेदार 'सरस')

यह अमर कृति श्रुति सुधामय, अन्यतम बेजोड़ है।
सत्यप्रिय जनहित सुनिश्चित, क्रान्तिकारी मोड़ है॥
ग्रन्थ यह आरम्भ से हो, यह चला है मान के।
धर्म वह है जो खरा उतरे, निकष पर ज्ञान के।
कह रहे हैं सब सुधी, इस ग्रन्थ को क्या बात है?
नीर क्षीर विवेक इसका, विश्व में विख्यात है॥
अन्धविश्वासी कुबुद्धिजन, अब दमक सकते नहीं।
जगमगाता है सूर्य जब, जुगनू हैं चमक सकते नहीं॥

सत्यार्थ प्रकाश-
एक पाकिस्तानी की नजर में

दयानन्द मथुरादास कालेज मोगा के प्रिंसिपल के नाम लाहौर से एक पाकिस्तानी का पत्र प्राप्त हुआ है। 15 अक्तूबर 1974 को भारत और पाक के मध्य डाक और तार का सिलसिला शुरु हुआ और उसी दिन उस व्यक्ति ने अपना पत्र जो भारत में किसी के नाम लिखा था वह यही था। ऐसा मालूम होता है कि लिखने वाला किसी जमाने में मोगा में इसी कालेज में पढ़ता था। चूंकि इस कालेज का संबंध आर्य समाज से है अतः यहां किसी जमाने में सत्यार्थ प्रकाश भी पढ़ाया जाता था। पत्र लिखने वाले ने उन्हीं दिनों सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा था। उसका इसके दिलो दिमाग पर जो प्रभाव पड़ा उसका अनुमान हम इस पत्र से लगा सकते हैं जो मैं पाठकों की दिलचस्पी के लिए अविकल रूप से नीचे नकल कर रहा हूं।

"जनाबआली, गुजारिश है कि बन्दा 1931 में आपके कालेज में पढ़ा करता था। धर्मशिक्षा के पीरियड में बन्दा ने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ी थी। इस किताब के मुतालया ने मेरी जिन्दगी में एक बहुत बड़ा इन्कलाब पैदा कर दिया। जिसकी वजह से मैं मुसल्लसल मसायब का शिकार हो रहा हूं। 43 साल गुजरे मेरी इस तहकीक पर। मैं मारें खाता हूं। मुलाजमत से निकाला जाता हूं। मुझ पर पत्थरों की बौछार की जाती है, मेरा राशन पानी बन्द किया जाता है। मेरे रिश्तेदार मुझे समझाते हैं, पड़ोसी मुझे सताते हैं लेकिन मैं किस तरह से हकीकत से इन्कार करुं। मैं जान तो दे सकता हूं किन्तु ईमान नहीं दे सकता। नहीं छोड़ सकता - नहीं छोड़ सकता। किसी भी कीमत पर सच्चाई को नहीं झुठला सकता।

लोग मुझे मुवाफक बनाना चाहते हैं कि जान बचाने के लिए या अपना घरबार बचाने के लिए उनकी हां में हां मिला दूं। लेकिन मैं ऐसी जलील जिन्दगी से मौत को तरजीह देता हूं। आपकी निवाजश होगी मगर आप मुझे 'सत्यार्थ प्रकाश' किताब की एक जिल्द जरूर भेज दें। मुझे बड़ी खुशी हुई कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में खतोकिताबत का रास्ता निकला। नहीं तो यह लोग मेरी इन बातों पर यकीन न करते थे कि सत्यार्थ प्रकाश में क्या कुछ लिखा है। जब किताब होगी तो हर मोतरिज को हर उस शख्स को जो मुझे कतल करने के लिए आएगा यह किताब पेश करके कहूंगा कि इसको बदल ला तो मैं तुम्हें मान जाऊंगा। लेकिन मैं जानता हूं उनके पास इनका कोई जवाब नहीं है।

आपकी बड़ी अनायत होगी अगर आप मन्दिर या जेल एड्रेसं पर भी सत्यार्थ प्रकाश की एक एक जिल्द भेज कर ममनून फरमायेंगे। (1) वजीरे आजम पाकिस्तान इस्लामाबाद रावलपिंडी (2) मुफ्ती महमूद अहमद इस्लामाबाद (3) मौलवी शाह अहमद नूरानी इस्लामाबाद (4) मौलवी अब्बल अलाह मादूदी जमाते इस्लामी इनछरा लाहौर।

मैं उम्मीद करता हूं कि आप मेरी दरख़्वास्तों पर जरूर अमल फरमायेंगे। मेहरबानी फरमाकर जरूर मुझे हुकमेआनी से मतलाह फरमायें। दर्जा बदर्जा सबको सलाम अलेकम। गुलाम नबी सावक सूबेदार मेजर 221 रहमान पुरा लाहौर - 16"

जो इस पत्र में लिखा है हम इससे अनुमान लगा सकते हैं कि इस पुस्तक का कुछ लोगों पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है। 1931 में इसने मोगा के डी. एम. कालेज में सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा था! 1947 में देश का विभाजन हो गया किन्तु 43 वर्ष गुजर जाने पर भी सत्याथ प्रकाश का असर अभी भी उस पर कायम है।

(डा.ए.वी. आर्य, सार्वदेशिक 9-1-93)

हृदयोद्गार

सत्यार्थप्रकाश जैसा ग्रन्थ सच्चे आर्य सनातन धर्म का सन्देश देने के साथ अन्धविश्वास व पाखण्ड को दूर करता है। इसके पढ़ने से तर्कबुद्धि का विकास होता है। मनुष्यमात्र के कल्याण की भावना से यह ग्रन्थ लिखा गया है। किसी के प्रति इसमें द्वेष नहीं। ईसाई, मुसलमान भी यदि तेरहवें व चौदहवें समुल्लास को द्वेष रहित होकर पढ़ें तो वे भी धर्मतत्व को समझने में समर्थ होंगे।

(सेठ जुगल किशोर बिड़ला)

यह ग्रन्थ सत्य और असत्य को जांचने की कसौटी है। यह उन लोगों के लिए—जो अन्धेरे में भटकते है—मार्ग दर्शक है। वे इस ग्रन्थ के अध्ययन से अपने आचार विचार को शुद्ध और सफल कर सकते हैं।

(स्वामी सत्यदेव)

मैंने सत्यार्थ प्रकाश को कम से कम 18 बार पढ़ा। जितनी बार मैं उसे पढ़ता हूं, मुझे मन और आत्मा के लिए कुछ नवीन भोजन मिलता है। पुस्तक गूढ़ सच्चाइयों से भरी पड़ी है।

(पं. गुरुदत्त विद्यार्थी)

कारागार की छड़ों के पीछे एक वर्ष तक "सत्यार्थ प्रकाश" मेरा मित्र, प्रकाशस्तम्भ और जीवन बना रहा। सत्यार्थ प्रकाश में वेद का तत्व है। इसके महत्व को कम करने का अर्थ है कि वेदों के बहुमूल्य सार की प्रतिष्ठा तथा मूल्य को कम किया जाय।

(सी. एस. रंगा अय्यर)

★

सत्यार्थ प्रकाश

(डा० हरिशंकर शर्मा)

प्राणों से भी बढ़ कर प्यारा,
है "सत्यार्थ प्रकाश" हमारा।

मोह महातम हरने वाला,
ज्ञान उजाला करने वाला,
भव्य भावना भरने वाला,
दिव्य ज्योति का स्रोत सितारा,
है "सत्यार्थ प्रकाश" हमारा॥

शुभ सन्मार्ग सुझाया इसने,
बुद्धिवाद उमगाया इसने,
गुरुडम का गढ़ ढाया इसने,
जग में निर्भय भाव प्रचारा,
है "सत्यार्थ प्रकाश" हमारा॥

सोता देश जगाया जिसने,
प्रेम प्रवाह बहाया जिसने,
स्वावलम्बन सिखलाया जिसने,
जिसने सत्यधर्म विस्तारा,
है "सत्यार्थ प्रकाश" हमारा॥

वैदिक धर्म ध्वजा फहराएं,
बलिवेदी पर सीस चढ़ाएं,
मरते मरते गाते जाएं,
अजर अमर अक्षय ध्रुवधारा,
है "सत्यार्थ प्रकाश" हमारा॥

★

सत्यार्थ प्रकाश का चमत्कार

मैंने इस्लाम मत क्यों छोड़ा ?

मेरा जन्म मुसलमानों के उस समुदाय में हुआ था जो किसी समय बादशाही तलवार के जोर से या किसी पद की लोलुपता से मुसलमान बनाए गए थे। मेरे पिता जो खेतड़ी के बाशिन्दे थे जो संवत् 1968 विक्रमी में जयपुर राज्य के उत्तरी भाग शेखावाटी प्रान्त के पचेरी ग्राम में बस गए थे।

पचेरी के जागीरदार ठाकुर धोकल सिंह जी बड़े ही आततायी, अत्याचारी थे। जब मैं युवा हो गया तब मेरे मन पर धोकल सिंह जी के कुकृत्यों का बुरा असर दिखाई देने लगा। श्री ठाकुर नारायण सिंह जी और ठाकुर शैतान सिंह जी और मैंने इस आततायी के अत्याचारों को समाप्त करने का निश्चय कर लिया। धोकल सिंह की जीवन लीला समाप्त कर देने के बाद मुझे आजन्म कारावास की सजा हुई।

राजनैतिक आन्दोलन के बन्दी श्री चौधरी घासी राम जी आर्य भजनीक और श्री पण्डित तारकेश्वर जी शर्मा, जो मेरे बाल्यकाल के सहपाठी थे, वे भी उसी जेल में आ गए। मुझे उदास देख कर श्री घासीराम जी ने इसका कारण पूछा। मेरे द्वारा अशान्ति और उदासी का कारण बताए जाने पर उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने की प्रेरणा दी। मैंने सत्यार्थ प्रकाश तन्मयता से पढ़ा। मैं अपने पाठकों को सत्य कहता हूं कि इस अमरग्रन्थ को पढ़ते से मुझे अत्यधिक आत्मशान्ति प्राप्त हुई।

मैंने सत्यार्थ प्रकाश के साथ उपनिषदों, महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों को अच्छी तरह से पढ़ा। इन सब ग्रन्थों के अध्ययन से

मुझे बहुत लाभ हुआ और मेरा पूरा झुकाव सत्य सनातन वैदिक धर्म की प्रतीक आर्य समाज की ओर हो गया।

11—12 वर्ष की जेल भोग कर मुक्त होने के पश्चात् सन् 1947 में आर्य समाज शेखावटी में मैंने अपना शुद्धि संस्कार करवाया। सन् 1962 में अजमेर दयानन्द मेले के अवसर पर मैंने पण्डित ओम् भक्त जी वानप्रस्थ से प्रचारक बनने की इच्छा प्रकट की जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया और अपने पास बुला लिया। मैं यहां साधनाश्रम में महर्षि स्वामी दयानन्द जी के वैदिक सिद्धान्तों का अध्ययन कर अपने शेष जीवन को इसी के प्रचार कार्य में लगाने की प्रबल इच्छा रखता हूं। मुझे यज्ञोपवीत देकर मेरा नाम सुबालाल से सुखदेव रखा है। मुझे आशा है कि यदि मैं कुछ समय टिका रहा तो मेरी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।

(सार्वदेशिक 21 जून 1981 में छपे डा० भवानी लाल भारतीय के लेख का संक्षिप्त रुप)

पाखण्डों की लाश

भारत की गौरव गरिमा सुप्त पड़ी थी,
ऋषियों की परम्परा की लुप्त कड़ी थी।
पुण्य धर्म था शेष यहां बस कहने में,
सुख समझा था जन - जन ने दुःख सहने में।।
ऐसे में दयानन्द ने ज्योति दिखाई,
वेद ज्ञान ज्योतित मंजुल राह बतायी।
खंड - खंड कर अधर्म जय ध्वजा उठाई,
जाग उठी नव जीवन पा तरुणायी।।
निशा निराशा की दूर हुई थी मन से,
धर्म फैलने लगा उभर नूतन बल से।
युग बदला, पाखण्डों की लाश पड़ी थी,
नए धरण धर कर जनता आज बढ़ी थी।।

ध्वजा न झुकने देंगे

—श्रीमती राकेश रानी

धरती का आंचल मैला था,
मानवता अज्ञान ग्रस्त थी।
सत्यमार्ग सब भूल चुके थे,
जीवनतन्त्री रुद्ध अस्त थी॥

शस्य श्यामला देवभूमि यह,
पाखण्डों से भरी पड़ी थी।
स्नेह नहीं था, ऐक्य नहीं था,
सदन कष्ट की लगी झड़ी थी।

ऐसे में ही ऋषिवर ने था,
सबको 'सत्यार्थ प्रकाश' दिखाया।
वेद ज्ञान की ज्योति प्रबल से,
जग का तम अज्ञान हटाया॥

ज्ञान प्रभा आलोक प्राण से,
जन-जन मन में दीप जलाए।
क्षुब्ध सुप्त अन्तर मानव के,
दीप्ति पुंज से पुनः जगाए॥

जाग उठे हम, अब न कहीं पर,
पाखण्डों को रहने देंगे।
प्राणों की हवि दे दे कर भी,
ऋषि की ध्वजा न झुकने देंगे॥

बाधाएं कितनी भी आएं,
गतिज्ञान नहीं रुकने देंगे।
विजय वरण हित चरण बढ़े,
तो अन्याय नहीं चलने देंगे॥

॥ ओ३म् ॥

सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः

भूमिका

जिस समय मैंने यह ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन - पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है। इस लिए इस ग्रन्थ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है। कहीं - कहीं शब्द वाक्य रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था, क्योंकि इसके भेद किए बिना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है, प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हां, जो प्रथम छपने में कहीं-कहीं भूल रही थी, वह निकाल शोध कर ठीक - ठीक कर दी गई है।

यह ग्रन्थ चौदह समुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है। इसमें दश समुल्लास पूर्वार्द्ध और चार उत्तरार्द्ध में बने हैं।

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य - सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और

असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। इसलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो जो बातें सबके अनुकूल सबमें सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर वर्तें वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेक विध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।

इसमें अभिप्राय यह रखा गया है कि जो २ सब मतों में सत्य २ बातें हैं वे सब में अविरुद्ध होने से उनको स्वीकार करके जो जो मत मतान्तरों में मिथ्या बातें हैं उन उन का खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रखा है कि सब मतमतान्तरों की गुप्त वा प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान् सब साधारण

मनुष्यों के सामने रखा है, जिससे सबसे सबका विचार होकर परस्पर प्रेमी होके एक सत्य मतस्थ होवें।

यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूं वैसे ही दूसरे देशस्थ मतोन्नति वालों के साथ भी वर्तता हूं। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूं वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को वर्तना योग्य है। क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्द करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता। परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।

आर्यावर्तियों के विषय में विशेष कर ग्यारहवें समुल्लास तक लिखा है। इन समुल्लासों में जो कि सत्यमत प्रकाशित किया है, वह वेदोक्त होने से मुझको सर्वथा मन्तव्य हैं और जो नवीन पुराण तन्त्रादि ग्रन्थोक्त बातों का खण्डन किया है, वे त्यक्तव्य हैं।

बारहवें समुल्लास में चार्वाक, बौद्ध और जैन का मत संक्षेप में लिखा गया है। यथायोग्य वहीं समझ लेना।

तेरहवें समुल्लास में ईसाइयों का मत लिखा है। ये लोग बायबिल को अपना धर्म पुस्तक मानते हैं। चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत के विषय में लिखा है। ये लोग कुरान को अपने मत का मूल पुस्तक मानते हैं और इसके आगे वैदिक मत के विषय में लिखा है।

जो कोई ग्रन्थकर्ता के तात्पर्य से विरुद्ध मनसा से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा।

बहुत से हठी दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेष कर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से बुद्धि अन्धकार में फंस के नष्ट हो जाती है। इसलिए जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देख कर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिए प्रयत्न करता हूं, वैसा सबको करना योग्य है।

इन मतों के थोड़े - थोड़े ही दोष प्रकाशित किए हैं, जिनको देख कर मनुष्य लोग सत्यासत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने कराने में समर्थ होवें। क्योंकि एक मनुष्य जाति में बहका कर, विरुद्ध बुद्धि कराके, एक दूसरे को शत्रु बना लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहिः है। यद्यपि इस ग्रन्थ को देख कर अविद्वान् लोग अन्यथा विचारेंगे तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इनका अभिप्राय समझेंगे। इसलिए पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मेरा वा सब महाशयों का मुख्य कर्त्तव्य काम है।

★ इति भूमिका ★

स्थान महाराणा जी का उदयपुर, भाद्रपद शुक्लपक्ष संवत्—1939] (स्वामी) दयानन्द सरस्वती

॥ ओ३म् ॥

अथ प्रथमः समुल्लासः

महर्षि दयानन्द ने प्रथम समुल्लास में ईश्वर के भिन्न - भिन्न नामों का वर्णन किया है। कहीं तो उसका नाम गुण के आधार पर है, कहीं कर्म के आधार पर और कहीं स्वभावानुसार। अतः जहां पर — " स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं, वहीं इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है, अन्यत्र नहीं " और " जहां - जहां उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहां वहां परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता। वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से पृथक् है। "

क्योंकि वेदादि शास्त्रों में जहां ये ईश्वर के नाम हैं वहां अन्य पदार्थों के भी हैं। इसलिए प्रकरण के अनुसार ही हमें अर्थ को समझना चाहिए।

जहां जहां सर्वज्ञादि विशेषण हों वहां वहां परमात्मा और जहां जहां इच्छा द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों, वहां वहां जीव का ग्रहण होता है। ऐसा सर्वत्र समझना चाहिए। क्योंकि परमेश्वर का जन्म मरण कभी नहीं होता। जैसे —

ओ३म् खं ब्रह्म ॥ यजु. 40/17

देखिए ऐसे प्रकरणों में ' ओ३म् ' आदि परमेश्वर के नाम हैं। यहां इन प्रमाणों के लिखने का तात्पर्य यही है कि ऐसे प्रमाणों में ओंकारादि नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है।

परमेश्वर के सब नाम सार्थक तथा परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं, जैसे लोक में दरिद्री आदि के धनपति आदि नाम होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि परमेश्वर के नाम कहीं गौणिक, कहीं कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं।

और जहां जहां ऐसे प्रकरण हैं कि—

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुष:॥

यजु. 31/5

ऐसे प्रमाणों में विराट्, पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं। इसी से यहां विराट् आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण न होके संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है।

महर्षि दयानन्द का यह दृढ़ विश्वास है कि वेदों में केवल एक ईश्वर की ही स्तुति - प्रार्थना - उपासना का वर्णन है, भिन्न - भिन्न देवी देवताओं का नहीं। एक ईश्वर ही उपास्य देव है अन्य नहीं। क्योंकि स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठ ही की जाती है। श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो गुण, कर्म, स्वभाव और सत्य-सत्य व्यवहारों में सब से अधिक हो। उन श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ, उसको परमेश्वर कहते हैं जिसके तुल्य कोई न हुआ, न है और न होगा। जब तुल्य नहीं तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है? जैसे परमेश्वर के सत्य, न्याय, दया, सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ वा जीव के नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है उस के गुण, कर्म, स्वभाव भी सत्य होते हैं। इसलिए मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, उससे भिन्न की कभी न करें।

ईश्वर के प्रमुख नाम

अब आगे परमेश्वर के प्रसिद्ध एवं प्रमुख नामों का वर्णन किया जायेगा। विस्तृत जानकारी के लिए सुधीजनों को बड़ा सत्यार्थ प्रकाश ही पढ़ना चाहिए।

ओ३म् — यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक ओ३म् समुदाय हुआ है, इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत से नाम आते हैं। जैसे अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि, उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि; मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया हैं।

'ओ३म्' नाम सार्थक है जैसे - अवतीत्योम् अर्थात् रक्षा करने से ईश्वर का नाम 'ओ३म्' है।

ओमित्येतदक्षरमुदगीथमुपासीत् ॥ छान्दोग्य उप. 1/॥

'ओ३म्' जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं।

ओमित्येतदक्षरमिदँ सर्वं तस्योपव्याख्यानम्। माण्डूक्य उप.।

सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम 'ओ३म्' को कहा है।

विराट् — 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'राजृ दीप्तौ' धातु से क्विप् करने से 'विराट्' शब्द सिद्ध होता है। विविध अर्थात् जो बहुत प्रकार से जगत् को प्रकाशित करे। इससे 'विराट्' नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है।

अग्नि—जो ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'अग्नि' है।

विश्व — जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इनमें व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम विश्व है। इत्यादि नामों का ग्रहण अकार मात्रा से होता है।

हिरण्यगर्भ—जिसमें सूर्यादि तेज वाले लोक उत्पन्न हो के जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजः स्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवास स्थान है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'हिरण्यगर्भ' है।

वायु—जो चराचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करे और सब बलवानों से बलवान् है, इससे ईश्वर का नाम 'वायु' है

तैजस् - जो आप स्वयं प्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करने वाला है, इससे उस ईश्वर का नाम 'तैजस्' है। इत्यादि नामार्थ उकार मात्रा से ग्रहण होते हैं।

ईश्वर - जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'ईश्वर' है।

आदित्य - जिसका विनाश कभी न हो, उसी ईश्वर की 'आदित्य' संज्ञा हैं।

प्राज्ञ - जो निर्भ्रान्त ज्ञानयुक्त चराचर जगत् के व्यवहार को यथावत् जानता है, इससे ईश्वर का नाम 'प्राज्ञ' है। इत्यादि नामार्थ मकार से गृहीत होते है। जैसे एक - एक मात्रा से तीन-तीन अर्थ यहां व्याख्यात किए हैं, वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओंकार से जाने जाते हैं।

मित्र - जो सबसे स्नेह करने और सबको प्रीति करने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'मित्र' है।

प्रश्न — मित्रादि नामों से सखा और इन्द्रादि देवों के प्रसिद्ध व्यवहार देखने से उन्हीं का ग्रहण करना चाहिए।

उत्तर — यहां उनका ग्रहण करना योग्य नहीं, क्योंकि जो मनुष्य किसी का मित्र है वही अन्य का शत्रु और किसी से उदासीन भी देखने में आता है। इससे मुख्यार्थ में सखा आदि का ग्रहण नहीं हो सकता। किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र, न किसी का शत्रु और न किसी से उदासीन है, इससे भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता। इसलिए परमात्मा ही का ग्रहण होता है। हां, गौण अर्थ में मित्रादि शब्द से सुहृदादि मनुष्यों का ग्रहण होता है।

वरुण — जो आत्मयोगी, विद्वान् मुक्ति की इच्छा करने वाले मुक्त और धर्मात्माओं का स्वीकार करता, अथवा जो शिष्ट, मुमुक्षु, मुक्त और धर्मात्माओं से ग्रहण किया जाता है, वह ईश्वर 'वरुण' संज्ञक है।

इन्द्र — जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त है, इसी से उस परमात्मा का नाम 'इन्द्र' है।

विष्णु — चर और अचर रूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम 'विष्णु' है।

ब्रह्मा — जो सबके ऊपर विराजमान, सबसे बड़ा, अनंत बलयुक्त परमात्मा है या जो सम्पूर्ण जगत् को रच के बढ़ाता है, इससे परमेश्वर का नाम 'ब्रह्मा' है।

शिव — जो कल्याण स्वरूप और कल्याण का करने हारा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'शिव' है।

शंकर — जो कल्याण अर्थात् सुख का करने हारा है, इससे उस ईश्वर का नाम 'शंकर' है।

महादेव — जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का

विद्वान्, सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है, इसलिए उस परमात्मा का नाम 'महादेव' है।

गणेश, गणपति — जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करने हारा है, इससे उस ईश्वर का नाम 'गणेश' वा 'गणपति' है।

कुवेर — जो अपनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करे, इससे उस परमेश्वर का नाम 'कुवेर' है।

रुद्र — जो दुष्ट कर्म करने हारों को रुलाता है' इससे उस परमेश्वर का नाम 'रुद्र' हैं।

यज्ञ — जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है। ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम 'यज्ञ' है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है।

बन्धु — जिसने अपने में सब लोक लोकान्तरों को नियमों में बद्ध कर रखे और सहोदर के समान सहायक है इसी से अपनो अपनी परिधि वा नियम का उल्लंघन नहीं कर सकते। जैसे भ्राता भाइयों का सहायकारी होता है वैसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकों के धारण, रक्षण और सुख देने से 'बन्धु' संज्ञक है।

पिता — जो सबका रक्षक, जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उन्नति चाहता है वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है, इससे उसका नाम 'पिता' है।

माता — जैसे पूर्ण कृपायुक्त जननी अपने सन्तान का सुख और उन्नति चाहती है वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है, इससे परमेश्वर का नाम 'माता' है।

आचार्य — जो सत्य आचार का ग्रहण करानेहारा और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होके सब विद्या प्राप्त कराता है, इससे परमेश्वर का नाम 'आचार्य' है।

गुरु — जो सत्यधर्मप्रतिपादक सफल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'गुरु' है।

सत् — जो सदा वर्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालों में जिसका बाध न हो, उस परमेश्वर को 'सत्' कहते हैं।

चित् — जो चेतन स्वरूप सब जीवों को चिताने और सत्यासत्य का जाननेहारा है, इसलिए उस परमात्मा का नाम 'चित्' है।

आनन्द — जो आनन्द स्वरूप जिसमें सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते और जो सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता, इससे ईश्वर का नाम 'आनन्द' है।

इन तीनों शब्द के विशेषण होने से परमेश्वर को 'सच्चिदानन्द' कहते हैं।

श्री — जिसका सेवन सब जगत्, विद्वान् और योगीजन करते है, इससे उस परमात्मा का नाम 'श्री' है।

लक्ष्मी — जो सब चराचर जगत् को देखता चिन्हित अर्थात् दृश्य बनाता, जैसे शरीर के नेत्र, नासिका और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र, सूर्यादि चिन्ह बनाता तथा सबको देखता, सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'लक्ष्मी' है।

सरस्वती — जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बन्ध प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे, इससे उस परमेश्वर का नाम 'सरस्वती' है।

सूर्य — जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते फिरते हैं, अप्राणी अर्थात् स्थावर जड़ अर्थात् पृथिवी आदि हैं उन सबके आत्मा होने और स्वप्रकाश स्वरूप सबके प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम 'सूर्य' है।

चन्द्र — जो आनन्दस्वरूप और सबको आनन्द देने वाला है, इसलिए ईश्वर का नाम 'चन्द्र' है।

मंगल — जो आप मंगल स्वरूप और सब जावों के मंगल का कारण है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'मंगल' है।

बुध — जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवों के बोध का कारण है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'बुध' है।

बृहस्पति — जो बड़ों से भी बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी है, इससे परमेश्वर का नाम 'बृहस्पति' है।

शुक्र — जो अत्यधिक पवित्र और जिस के संग से जीव भी पवित्र हो जाता है, इसलिए ईश्वर का नाम 'शुक्र' है

शनैश्चर — जो सब में सहज से प्राप्त धैर्यवान् है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'शनैश्चर' है।

राहु — जो एकान्त स्वरूप जिसके स्वरूप में पदार्थ संयुक्त नहीं, जो दुष्टों को छोड़ने और अन्य को छुड़ाने हारा है, इस से परमेश्वर का नाम 'राहु' है।

केतु — जो सब जगत् का निवास स्थान, सब रोगों से रहित और मुमुक्षुओं को मुक्ति समय में सब रोगों से छुड़ाता है, इस लिए उस परमात्मा का नाम 'केतु' है।

धर्मराज — जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित, धर्म ही का प्रकाश करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'धर्मराज' है।

यम — जो सब प्राणियों के कर्मफल देने की व्यवस्था करता और सब अन्यायों से पृथक् रहता है, इसलिए परमात्मा का नाम 'यम' है।

काल — जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम 'काल' है।

शेष — जो उत्पत्ति और प्रलय से शेष अर्थात् बच रहता है, इसलिए उस परमात्मा का नाम 'शेष' है।

स्वयंभू — जो आप से आप ही है, किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ है, इससे उस परमात्मा का नाम 'स्वयंभू' है।

इस प्रकार ईश्वर के अनेक नामों का वर्णन करने के पश्चात् महर्षि दयानन्द लिखते हैं —

ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं परन्तु इससे भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं वैसे उनके अनन्त नाम भी हैं। इनमें से प्रत्येक गुण, कर्म, स्वभाव का एक - एक नाम है। इससे ये मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने बिन्दुवत् हैं। क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण, कर्म, स्वभाव व्याख्यात किए हैं। उनके पढ़ने पढ़ाने से बोध हो सकता है। और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा - पूरा हो सकता है जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ते हैं।

प्रश्न — जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि, मध्य और अन्त में मंगलाचरण करते हैं वैसे आपने कुछ भी न लिखा न किया?

उत्तर — ऐसा हमको करना योग्य नहीं, क्योंकि जो आदि, मध्य और अन्त में मंगल करेगा तो उसके ग्रन्थ में आदि मध्य और मध्य तथा अन्त के बीच में जो कुछ लेख होगा वह अमंगल ही रहेगा। इसलिए जो न्याय, पक्षपात रहित, सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है उसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मंगलाचरण कहाता है। ग्रन्थ के आरम्भ से लेके समाप्तिपर्यंन्त सत्याचार का करना ही मंगलाचरण है, न कि कहीं मंगल और कहीं अमंगल लिखना।

इसलिए जो आधुनिक ग्रन्थों में 'श्री गणेशाय नम:', 'सीतारामाभ्याम् नम:', 'राधाकृष्णाभ्याँ नम:', 'श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यां नम: 'हनुमते नम:', 'दुर्गायै नम:', 'वटुकाय नम:', 'भैरवाय नम:', 'शिवाय नम:', 'सरस्वत्यै नम:, 'नारायणाय नम:' इत्यादि लेख देखने में आते हैं। इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्या ही समझते हैं क्योंकि वेद और ऋषियों मुनियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता, और आर्ष ग्रन्थों में 'ओ३म्' तथा 'अथ' शब्द तो देखने में आता है। जो वैदिक लोग वेद के आरम्भ में 'हरि ओ३म्' लिखते और पढ़ते हैं, यह पौराणिक और तान्त्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से सीखे हैं। वेदादि शास्त्रों में 'हरि' शब्द आदि में कहीं नहीं। इसलिए 'ओ३म्' वा 'अथ' शब्द ही ग्रन्थ के आदि में लिखना चाहिए।

★

इति प्रथम: समुल्लास: सम्पूर्ण:

अथ द्वितीय: समुल्लास:

बाल शिक्षा

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ॥
शतपथ

वस्तुत: जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य ! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता पिता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं जैसे माता सन्तानों पर जितना प्रेम और उनका हित करना चाहती उतना अन्य कोई नहीं करता।

माता पिता को अति उचित है कि मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रुक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करे, वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें।

इस प्रकार जो स्त्री पुरुष करेंगे उनके उत्तम सन्तान दीर्घायु, बल, पराक्रम की वृद्धि होती रहेगी।

बालकों की माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगे तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे। जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े छोटे मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें, जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र

प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें। सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें।

जब पांच पांच वर्ष के लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें, अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए — जिससे सन्तान किसी धूर्त के बहकावे में न आवें, और जो जो विद्याधर्म विरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं, उनका भी उपदेश कर दें जिससे भूतप्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।

जिसको शंका, कुसंग, कुसंस्कार होता है, उसको भय और शंकारुप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं।

प्रश्न — क्या जो यह संसार में राजा प्रजा सुखी दुःखी हो रहे हैं यह ग्रहों का फल नहीं है?

उत्तर — नहीं, ये सब पाप पुण्यों के फल हैं।

प्रश्न — तो क्या ज्योति : शास्त्र झूठा है?

उत्तर — नहीं, जो उसमें अंक, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है।

प्रश्न — क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है?

उत्तर — हां, वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम 'शोकपत्र' रखना चाहिए। क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है तब सब को आनन्द होता है परन्तु यह आनन्द तब तक होता है कि जब तक जन्मपत्र बन के ग्रहों का फल न सुनें।

गुरु आदि भी पुण्यदान करा के आप ले लेते हैं। शीतला, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, आदि ये भी ऐसे ही ढोंग मचाते हैं।

अतः इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़ कर धार्मिक, सब देश के उपकार कर्ता, निष्कपटता से सबको विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान् लोगों का प्रत्युपकार करना जैसा वे जगत् का उपकार करते हैं, इस काम को कभी न छोड़ना चाहिए। और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना चाहते हैं उनको भी महापामर समझना चाहिए। इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था में ही सन्तानों के हृदयों में डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़ के दुःख न पावें।

जैसी अन्ध शिक्षा की, वैसी चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें।

माता, पिता, आचार्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उनका ग्रहण करो और जो जो दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो।

वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों की बीच में बगुला।

यही माता पिता का कर्त्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विधा, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षा युक्त करना। यह बालशिक्षा में थोड़ा सा लिखा, इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेगें।

इति द्वितीय : समुल्लास : सम्पूर्ण :

अथ तृतीयः समुल्लासः

अध्ययन - अध्यापन विधि

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव-रुप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है।

विद्यास्थान और अध्यापक

विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए और वे लड़के कौर लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिए जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य, अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें।

समान शिक्षा

सब को तुल्य वस्त्र, खान पान, आसन दिये जायं, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिए।

अनिवार्य शिक्षा

यह राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो। पिता, माता वा अध्यापक अपने लड़के लड़कियों को अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश करें —

ओ३म भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

यजु. 36/3

हे मनुष्यो ! जो सब समर्थों में समर्थ, सच्चिदानन्द, अनन्तस्वरुप, सबका धर्ता, पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत् का निर्माता, शुद्ध-स्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है उस परमात्मा का जो चेतन स्वरूप है उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामीस्वरुप हमको दुष्टाचार, अधर्मयुक्त मार्ग से हटाके श्रेठाचार सत्यमार्ग पर चलावे। उसको छोड़ कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें।

तत् पश्चात् जो सन्ध्योपासन , स्नान आचमन प्राणायाम आदि क्रिया हैं , सिखलावें। प्रथम स्नान इस लिए है कि जिससे शरीर के बाहय अवयवों की शुद्धि आरोग्य आदि होते हैं।

दूसरा देवयज्ञ- जो अग्निहोत्र और विद्वानों का संग सेवादिक से होता है। संध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करें। दो ही रात दिन की सन्धिवेला हैं अन्य नहीं।

प्रश्न - होम से क्या उपकार होता है ?

उत्तर - सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग , रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न - चन्दनादि घिस के किसी के लगावे वा घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं।

उत्तर - जो तुम पदार्थ विद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो जहां होम

होता है वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।

प्रश्न - जब ऐसा ही है तो केसर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुख कारक होगा।

उत्तर - इस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके क्योंकि उस में भेदक शक्ति नहीं है, और अग्नि का ही सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हल्का करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश कर देता है।

प्रश्न - तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर - मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायं और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें, वेदपुस्तकों का पठन पाठन और रक्षा भी होवे।

प्रश्न - प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक एक आहुति का कितना परिमाण है?

उत्तर - प्रत्येक मनुष्य को सोलह २ आहुति और छ २ माशे घृतादि एक २ आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिए और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है।

जब तक होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय।

पठन - पाठन की परीक्षा

अब जो पढ़ना पढ़ाना है वह अच्छे प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है। परीक्षा पांच प्रकार से होती है। एक — जो जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों के अनुकूल हो वह वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। दूसरी — जो जो सृष्टिक्रम के विरुद्ध है वह सब असत्य है, जैसे कोई कहे कि बिना माता पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ, ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है। तीसरी — 'आप्त' अर्थात् जो धार्मिक विद्वान्, सत्यवादी निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल है वह वह ग्राह्य और जो-जो विरुद्ध है वह अग्राह्य है। चौथी — अपने आत्मा की पवित्रता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूंगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा। पांचवीं — आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव।

इन पांच प्रकार की परीक्षाओं से सत्यासत्य का निश्चय मनुष्य कर सकता है अन्यथा नहीं। अतः जिस जिस ग्रन्थ को पढ़ावें उस उस की पूर्वोक्त प्रकार से परीक्षा करके जो सत्य ठहरे वह वह ग्रन्थ पढ़ावें। जो जो इन परीक्षाओं से विरुद्ध हों उन उन ग्रन्थों को न पढ़ें न पढ़ावें।

अथपठनपाठन विधि :

अब पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं — प्रथम पाणिनि मुनि कृत 'शिक्षा' जो सूत्ररूप है उसकी रीति अर्थात् इस अक्षर का यह स्थान, यह प्रयत्न, यह करण है। जैसे 'प' इसका

अथ तृतीयः समुल्लासः

अध्ययन - अध्यापन विधि

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव-रुप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है।

विद्यास्थान और अध्यापक

विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए और वे लड़के कौर लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिए जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य, अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें।

समान शिक्षा

सब को तुल्य वस्त्र, खान पान, आसन दिये जायं, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिए।

अनिवार्य शिक्षा

यह राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो। पिता, माता वा अध्यापक अपने लड़के लड़कियों को अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश करें —

ओ३म भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
यजु. 36/3

हे मनुष्यो ! जो सब समर्थों में समर्थ, सच्चिदानन्द, अनन्तस्वरुप, सबका धर्ता, पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत् का निर्माता, शुद्ध-स्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है उस परमात्मा का जो चेतन स्वरूप है उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामीस्वरुप हमको दुष्टाचार, अधर्मयुक्त मार्ग से हटाके श्रेठाचार सत्यमार्ग पर चलावे। उसको छोड़ कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें।

तत् पश्चात् जो सन्ध्योपासन , स्नान आचमन प्राणायाम आदि क्रिया हैं , सिखलावें। प्रथम स्नान इस लिए है कि जिससे शरीर के बाहय अवयवों की शुद्धि आरोग्य आदि होते हैं।

दूसरा देवयज्ञ- जो अग्निहोत्र और विद्वानों का संग सेवादिक से होता है। संध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करें। दो ही रात दिन की सन्धिवेला हैं अन्य नहीं।

प्रश्न - होम से क्या उपकार होता है ?

उत्तर - सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग , रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न - चन्दनादि घिस के किसी के लगावे वा घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं।

उत्तर - जो तुम पदार्थ विद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो जहां होम

होता है वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।

प्रश्न - जब ऐसा ही है तो केसर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुख कारक होगा।

उत्तर - इस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके क्योंकि उस में भेदक शक्ति नहीं है, और अग्नि का ही सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हल्का करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश कर देता है।

प्रश्न - तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर - मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायं और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें, वेदपुस्तकों का पठन पाठन और रक्षा भी होवे।

प्रश्न - प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक एक आहुति का कितना परिमाण है?

उत्तर - प्रत्येक मनुष्य को सोलह २ आहुति और छ २ माशे घृतादि एक २ आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिए और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है।

जब तक होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय।

पठन - पाठन की परीक्षा

अब जो पढ़ना पढ़ाना है वह अच्छे प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है। परीक्षा पांच प्रकार से होती है। एक — जो जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों के अनुकूल हो वह वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। दूसरी — जो जो सृष्टिक्रम के विरुद्ध है वह सब असत्य है, जैसे कोई कहे कि बिना माता पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ, ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है। तीसरी — 'आप्त' अर्थात् जो धार्मिक विद्वान्, सत्यवादी निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल है वह वह ग्राह्य और जो-जो विरुद्ध है वह अग्राह्य है। चौथी — अपने आत्मा की पवित्रता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने सुख प्रिय और दु:ख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दु:ख वा सुख दूंगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा। पांचवीं — आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव।

इन पांच प्रकार की परीक्षाओं से सत्यासत्य का निश्चय मनुष्य कर सकता है अन्यथा नहीं। अत: जिस जिस ग्रन्थ को पढ़ावें उस उस की पूर्वोक्त प्रकार से परीक्षा करके जो सत्य ठहरे वह वह ग्रन्थ पढ़ावें। जो जो इन परीक्षाओं से विरुद्ध हों उन उन ग्रन्थों को न पढ़ें न पढ़ावें।

अथपठनपाठन विधि :

अब पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं — प्रथम पाणिनि मुनि कृत 'शिक्षा' जो सूत्ररूप है उसकी रीति अर्थात् इस अक्षर का यह स्थान, यह प्रयत्न, यह करण है। जैसे 'प' इसका

के पढ़ाने सुनाने का न होता इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता ? जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाए हैं वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किए हैं।

जो स्त्रियों के पढ़ाने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।

प्रश्न - क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें ?

उत्तर - अवश्य, जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवें तो यज्ञ में स्वर सहित मन्त्रों का उच्चारण, संस्कृत भाषण कैसे कर सकें ? भारत की स्त्रियों में भूषण रुप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़ के पूर्ण विदुषी हुई थीं।

स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिए। क्योंकि इनके सीखे बिना सत्यासत्य का निर्णय, पति आदि से अनुकूल वर्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्यों को जैसा चाहिए वैसा कराना,वैद्यक विद्या से औषधवत् अन्नपान बनाना और बनवाना नहीं कर सकतीं, जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहें।

राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रख के विद्वान् कराना। जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता पिता को दण्ड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ बर्ष के पश्चात् लड़का वा लड़की किसी के घर में न रहने पावें किन्तु आचार्य कुल में रहें।

जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् होता है।

इति तृतीय : समुल्लास: सम्पूर्ण :

अथ चतुर्थः समुल्लासः

समावर्तन विवाह गृहस्थाश्रमविधि

चारो आश्रमों में गृहस्थाश्रम का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस आश्रम की सफलता के लिए आवश्यक है कि इस आश्रम में प्रवेश के इच्छुक यथावत् ब्रह्मचर्य आचार्यानुकूल वर्तकर, धर्म से चारों वेद, तीन वा दो अथवा एक वेद को सांगोपांग पढ़ के अखण्डित ब्रह्मचर्ययुक्त पुरुष वा स्त्री गुरु की यथावत् आज्ञा लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करे।

जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो उस कन्या से विवाह करना उचित है।

चाहे कितने ही धन, धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, भी आदि से समृद्ध हों पर विवाह सम्बन्ध में इन दस कुलों का त्याग कर देना चाहिए —

जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख, शरीर पर बड़े बड़े लोम अथवा बवासीर, क्षयी, दमा, खांसी, आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठयुक्त कुलों की कन्या वा वर के साथ विवाह न होना चाहिए। क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करने वाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं। इस लिए उत्तम कुल के लड़के और लड़कियों का आपस में विवाह होना चाहिए।

महर्षि ने विवाह के लिए पुरुष की आयु कम से कम पच्चीस वर्ष और कन्या की सोलह वर्ष मानी है। इसमें लड़के लड़कियों की प्रसन्नता मुख्य है।

चाहे लड़का लड़की मरणपर्यन्त कुमारे रहें परन्तु असदृश

अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिए।

प्रश्न — विवाह करना माता पिता के अधीन होना चाहिए वा लड़का लड़की के अधीन रहे?

उत्तर — लड़का लड़की के अधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए। क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता है और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है, माता - पिता का नहीं। जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिए। जब तक इनका मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता है।

विवाह का प्रयोजन

स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है कि धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करना। ईश्वर के सृष्टिक्रमानुकूल स्त्री पुरुष का स्वाभाविक व्यवहार रुक ही नहीं सकता, सिवाय वैराग्यवान् पूर्णविद्वान् योगियों के। संसार में व्यभिचार और कुकर्म को रोकने का एक यही श्रेष्ठ उपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सकें, वह विवाह न भी करें तो भी ठीक, परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका वेदोक्त रीति से विवाह अवश्य होना चाहिए।

विवाह के प्रकार

विवाह आठ प्रकार का होता है। एक ब्राह्म, दूसरा दैव, तीसरा आर्ष, चौथा प्राजापत्य, पांचवां आसुर, छठा गन्धर्व, सातवां राक्षस, आठवां पैशाच।

इन विवाहों की व्यवस्था यह है कि वर कन्या दोनों यथावत् ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्वान् धार्मिक और सुशील हों, उनका परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना 'ब्राह्म' कहाता है।

विस्तृत यज्ञ करने में ऋत्विक् कर्म करते हुए जामाता को अलंकार युक्त कन्या का देना 'दैव'। वर से कुछ लेके विवाह होना 'आर्ष'। दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के अर्थ होना 'प्राजापत्य'। वर और कन्या को कुछ देके विवाह होना 'आसुर'। अनियम, असमय किसी कारण से दोनों की इच्छापूर्वक वर कन्या का परस्पर संयोग होना 'गान्धर्व। लड़ाई करके बलात्कार अर्थात् छीन झपट वा कपट से कन्या का ग्रहण करना 'राक्षस'। शयन वा मद्यादि पी हुई पागल कन्या से बलात्कार संयोग करना 'पैशाच'।

इन सब विवाहों में ब्राह्म विवाह सर्वोत्कृष्ट, दैव और प्राजापत्य मध्यम, आर्ष, आसुर और गान्धर्व निकृष्ट, राक्षस अधम और पैशाच महाभ्रष्ट है।

विवाह का बन्धन

प्रश्न — विवाह क्यों करना? क्योंकि इससे स्त्री पुरुष को बन्धन में पड़के बहुत संकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है। इसलिए जिसके साथ जिसकी प्रीति हो तब तक वे मिले रहें, जब प्रीति छूट जाए तो छोड़ देवें।

उत्तर — यह पशु पक्षियों का व्यवहार है, मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे तो गृहस्थ आश्रम के अच्छे अच्छे व्यवहार सब नष्ट भ्रष्ट हो जायं। कोई किसी की सेवा भी न करे और व्यभिचार बढ़कर सब रोगी, निर्बल और अल्पायु होकर शीघ्र मर जायं। कोई किसी से भय वा लज्जा न करे। वृद्धावस्था में कोई किसी की सेवा भी न करे। कोई किसी के पदार्थों का स्वामी वा दायभागी भी न हो सके और न किसी का किसी पदार्थ पर दीर्घकालपर्यन्त स्वत्व रहे, इत्यादि दोषों के निवारणार्थ विवाह होना सर्वथा योग्य है।

वर्णव्यवस्था

जिस प्रकार गृहस्थ अपने विवाह वर्णानुक्रम से करते हैं वैसे ही वर्णव्यवस्था भी गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए। जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है, वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है।

प्रश्न — भला जो रज वीर्य से शरीर हुआ है वह बदल कर दूसरे वर्ण के योग्य कैसे हो सकता है ?

उत्तर — रजवीर्य के योग से ब्राह्मण शरीर नहीं होता। जो कोई रज वीर्य के योग से वर्णाश्रम व्यवस्था माने तो उससे पूछना चाहिए जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चीन, मुसलमान हो गया हो, उसको भी ब्राह्मण क्यों मानते ? यहां यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण कर्म छोड़ दिये, इसलिए वह ब्राह्मण नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणदि और नीच भी उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे, तो उसको नीच वर्ण में गिनना चाहिए।

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण, कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाय। वैसे ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण, कर्म, स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाय। वैसे ही क्षत्रिय वा वैश्य कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है। अर्थात् चारों वर्णों में जिस जिस वर्ण के सदृश जो जो पुरुष वा स्त्री हो वह वह उसी वर्ण में गिनी जावे।

इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने २ गुण, कर्म, स्वभाव युक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं।

वर्णों के कर्त्तव्य कर्म

ब्राह्मण -- पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना और लेना, शम, दम, तप, शौच, क्षान्ति (निन्दा, स्तुति, सुख, दु:ख हर्ष, शोक छोड़ के धर्म में दृढ़ रहना), आर्जव (कोमलता, सरलता) ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने जाहिए।

क्षत्रिय -- प्रजा की रक्षा, दान, अग्निहोत्रादि करना, अध्ययन, विषयों में न फंसना, शौर्य, धैर्य, तेज दाक्ष्य (राजा प्रजा सम्बन्धी व्यवहार में चातुर्य) युद्ध से न डरना और न भागना, पक्षपात रहित होके यथायोग्य वर्तना, प्रतिज्ञा पूरी करना, - ये क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण हैं।

वैश्य -- पशु रक्षा, दान, अग्निहोत्रादि करना, अध्ययन, सब प्रकार के व्यापार करना, व्याज पर लेन देन करना, खेती करना - ये वैश्य के गुण कर्म हैं।

शूद्र — शूद्र को योग्य है कि निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़ के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा यथावत् करना — यही एक शूद्र का गुण कर्म है।

शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिए है कि वह विद्यारहित मूर्ख होने से विज्ञानसंबंधी काम कुछ भी नहीं कर सकता किन्तु शरीर के सब काम कर सकता है। इस प्रकार वर्णों को अपने अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि सभ्य जनों का काम है।

गृहस्थ के कर्त्तव्य कर्म

प्रत्येक गृहस्थ को पांच प्रकार के यज्ञ करने चाहिए। प्रथम — ऋषियज्ञ — वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, सन्ध्योपासना करना; दूसरा — देवयज्ञ — विद्वानों का संग, सेवा, अग्निहोत्र ; तीसरा — पितृयज्ञ — देव अर्थात् विद्वान्, ऋषि, माता, पिता, आचार्य आदि की सेवा करनी, चौथा — वैश्वदेव — जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने उसमें से घृत मिष्टयुक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि अलग धर विधिपूर्वक होम करे। कुछ अन्न कुत्ते, चाण्डाल, पापरोगी, कौवे और कृमि अर्थात् चींटी आदि को देवे। पांचवां — अतिथि सेवा — अतिथि उसको कहते हैं जिसकी कोई तिथि निश्चित न हो अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, विद्वान् गृहस्थ के यहां आवे तो उसको आसन, खान पान आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा शुश्रूषा करके उनको प्रसन्न करे। पश्चात् सत्संग कर उपदेशों का श्रवण करें।

इन पांच महायज्ञों का फल यह है कि ब्रह्म यज्ञ करने से विद्या, शिक्षा, धर्म आदि में वृद्धि। अग्निहोत्र से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि होकर संसार को सुख प्राप्त होना। पितृयज्ञ से जब माता पिता और ज्ञानी महात्माओं की सेवा करेगा तब उसका ज्ञान बढ़ेगा। बलिवैश्वदेव का फल पूर्व कह आए हैं। अतिथियज्ञ - जब तक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते तब तक उन्नति भी नहीं होती। उनके सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती और मनुष्यमात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है।

इस प्रकार चारों वर्णों को परस्पर प्रीति, उपकार, सज्जनता, सुख - दुःख, हानि - लाभ में ऐक्यमत रहकर राज्य और प्रजा की उन्नति में तन, मन, धन का व्यय करते रहना चाहिए।

इति चतुर्थः समुल्लासः सम्पूर्णः

मैं आधुनिक भारत के मार्गदर्शक उस दयानन्द को आदरपूर्वक श्रद्धाञ्जलि देता हूँ, जिसने देश की पतितावस्था में भी हिन्दुओं को प्रभु की भक्ति और मानव समाज की सेवा के सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अथ पंचमः समुल्लासः

वानप्रस्थ आश्रम

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होके संन्यासी होवे। यह अनुक्रम से आश्रम का विधान है।

गृहस्याश्रम के पश्चात् मनुष्य का शरीर क्षीणता की ओर झुक जाता है उस समय मनुष्य जीवन के तीसरे भाग में प्रवेश करता है ताकि गृहस्थ आश्रम से सम्बन्ध कम हो और प्रभु की ओर ध्यान लगे। इसलिए घर के धंधों से अलग होकर वन में जाकर निवास करता है।

सब ग्राम के आहार और वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़ पुत्रों के पास स्त्री को रख वा अपने साथ लेके वन में निवास करे। नाना प्रकार के सामा आदि अन्न, सुन्दर शाक, मूल, फल, फूल कन्दादि से पञ्चमहायज्ञों को करे और उसी से अतिथि सेवा और आप भी निर्वाह करे।

शरीर के सुख के लिए अतिप्रयत्न न करे किन्तु ब्रह्मचारी रहे अर्थात् अपनी स्त्री साथ हो तथापि उससे विषयचेष्टा कुछ न करे, भूमि में सोवे, अपने आश्रित वा स्वकीय पदार्थों में ममता न करे, वृक्ष के मूल में बसे।

जो शान्त विद्वान् लोग वन में तप, धर्मानुष्ठान और सत्य की श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जंगल में बसते हैं वे जहां नाशरहित पूर्णपुरुष हानि लाभ रहित परमात्मा है, वहां निर्मल होकर प्राण द्वार से उस परमात्मा को प्राप्त होके आनन्दित हो जाते हैं।

वानप्रस्थ को उचित है कि नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास, सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करे।

संन्यास आश्रम

मनुष्य को संन्यास आश्रम से पूर्व यह भली प्रकार निश्चय कर लेना चाहिए कि उसके त्याग और वैराग्य में कोई न्यूनता तो नहीं है। अतः जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो उसी दिन घर वा वन से संन्यास ग्रहण कर लेवे अर्थात् वैराग्य होने पर गृहस्थाश्रम से सीधे संन्यास आश्रम में प्रवेश किया जा सकता है अथवा वानप्रस्थ के पश्चात् संन्यास धारण कर सकते हैं। या जो पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय, विषयभोग की कामना से रहित परोपकार करने की इच्छा से युक्त पुरुष हो, ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास ले लेवे।

संन्यासी के कर्त्तव्य कर्म

लोक में प्रतिष्ठा वा लाभ, धन से भोग वा मान्य पुत्रादि के मोह से अलग होके संन्यासी लोग भिक्षुक होकर रात दिन मोक्ष के साधनों में तत्पर रहते हैं।

कोई संसार में उसको दूषित वा भूषित करे तो भी संन्यासी सब प्राणियों में पक्षपात रहित होकर स्वयं धर्मात्मा और अन्यों को धर्मात्मा करने में प्रयत्न किया करे।

यह भी अपने मन में निश्चित जाने कि दण्ड, कमण्डलु और काषायवस्त्र आदि चिह्न धारण धर्म का कारण नहीं हैं। सब मनुष्यादि प्राणियों की सत्योपदेश और विद्यादान से उन्नति करना संन्यासी का मुख्य कर्म है।

संन्यासी को उचित है कि ओंकार पूर्वक सप्तव्याहृतियों से विधिपूर्वक प्राणायाम जितनी शक्ति हो उतने करे परन्तु तीन से तो न्यून प्राणायाम कभी न करे।

जैसे अग्नि में तपाने और गलाने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं वैसे ही प्राणों के निग्रह से मन आदि इन्द्रियों के दोष भस्मीभूत होते हैं।

संन्यासी लोग नित्यप्रति प्राणायामों से आत्मा, अन्तःकरण और इन्द्रियों के दोष, धारणाओं से पाप, प्रत्याहार से संगदोष ध्यान से अनीश्वर के गुणों अर्थात् हर्ष शोक और अविद्यादि जीव के दोषों को भस्मीभूत करें।

सब भूतों में निर्वैर, इन्द्रियों के विषयों का त्याग, वेदोक्त कर्म और अत्युग्र तपश्चरण से इस संसार में मोक्षपद को पूर्वोक्त संन्यासी ही सिद्ध कर और करा सकते हैं अन्य कोई नहीं।

जब संन्यासी सब भावों में अर्थात् पदार्थों में निःस्पृह आकांक्षा रहित और सब बाहर भीतर के व्यवहारों में भाव से पवित्र होता है तभी इस देह में मरण पाके निरन्तर सुख को प्राप्त होता है।

धीरे धीरे सब संग दोषों को छोड़ हर्षशोकादि सब द्वन्द्वों से विमुक्त होकर संन्यासी ब्रह्म में ही अवस्थित होता है। संन्यासियों का मुख्य कर्म यही है कि सब गृहस्थादि आश्रमों को सब प्रकार के व्यवहारों का सत्य निश्चय कर अधर्म व्यवहारों से छुड़ा सब संशयों का छेदन कर सत्यधर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त कराया करें।

प्रश्न - संन्यास-ग्रहण की आवश्यकता क्या है?

उत्तर - जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है वैसे ही आश्रमों

में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है क्योंकि इसके बिना विद्या धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमों को विद्या ग्रहण गृहकृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है पक्षपात छोड़कर वर्तना दूसरे आश्रमों को दुष्कर हैं जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का उपकार करता है वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता क्योंकि संन्यासी को सत्य-विद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का जितना अवकाश मिलता है उतना अन्य आश्रमों को नहीं मिल सकता। परन्तु जो ब्रह्मचर्य से संन्यासी हो कर जगत् को सत्य शिक्षा करके जितनी उन्नति कर सकता है, उतनी गृहस्थ वा वानप्रस्थ आश्रम करके संन्यासाश्रमी नहीं कर सकता।

प्रश्न - जो ब्रह्मचर्य से संन्यास लेवेगा उसका निर्वाह कठिनता से होगा और काम का रोकना अति कठिन है। इसलिए गृहाश्रम वानप्रस्थ होकर जब वृद्ध हो जाय तभी संन्यास लेना अच्छा है।

उत्तर - जो निर्वाह न कर सके, इन्द्रियों को न रोक सके, वह ब्रह्मचर्य से संन्यास न लेवे। परन्तु जो रोक सके वह क्यों न लेवे ? जिस पुरुष ने विषय के दोष और वीर्य संरक्षण के गुण जाने हैं वह विषयासक्त कभी नहीं होता। और उनका वीर्य विचाराग्नि का इन्धनवत् है और उसी में व्यय हो जाता है। जैसे वैद्य और औषधों की आवश्यकता रोगी के लिए होती है वैसी नीरोगी के लिए नहीं। इसी प्रकार जिस पुरुष वा स्त्री को विद्या धर्मवृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो, वह विवाह न करे। इसलिए संन्यासी का होना अधिकारियों को उचित है और जो अनधिकारी संन्यासग्रहण करेगा तो आप डूबेगा औरों को भी डुबावेगा।

संन्यासियों को उचित है कि सत्योपदेश, शंकासमाधान, वेदादि सत्य शास्त्रों का अध्यापन और वेदोक्त धर्म की वृद्धि प्रयत्न से करके सब संसार की उन्नति किया करें।

इस प्रकार जो स्वयं धर्मों में चलकर सब संसार को चलाते हैं। जिससे आप और सब संसार को इस लोक अर्थात् वर्तमान जन्म में, परलोक अर्थात् दूसरे जन्म में स्वर्ग अर्थात् सुख का भोग करते कराते हैं, वे ही धर्मात्मा जन संन्यासी और महात्मा हैं।

इति पंचम : समुल्लास: सम्पूर्ण :

चलो चुनौती दें

चलो चुनौती दें मिलकर अब,
हम सारे संसार को।
उठो, संभालो, आगे बढ़ कर,
दयानन्द पतवार को॥

पाखण्डों की काली छाया, धरती पर न शेष रहे।
महानाश के प्रेरक मत का, तनिक नहीं अवशेष रहे॥
मिटें वाद भेदों के बन्धन, युग का नव निर्माण हो।
मनुज - मनुज के अन्तस् में, झंकृत वेदों का गान हो॥

स्वर्ग बने यह वसुन्धरा,
बस ऐसी राह संवार दो।
वीर, बचाओ प्रलय लहर से,
मानव के मधुर प्यार को॥

अथ षष्ठः समुल्लासः

राज धर्म

विद्वान् सुशिक्षित होकर क्षत्रिय को योग्य है कि राज्य की रक्षा न्याय से यथावत् करे।

ईश्वर उपदेश करता है कि राजा और प्रजा के पुरुष मिल के सुख प्राप्ति और विज्ञान वृद्धि कारक राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में तीन सभा अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा, राजार्य सभा नियत करके बहुत प्रकार के समग्र प्रजा सम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करे।

उस राजधर्म को तीनों सभा संग्रामादि की व्यवस्था और सैना मिल कर पालन करें। सभासद् और राजा को योग्य है कि राजा सब सभासदों को आज्ञा देवे कि हे सभा योग्य मुख्य सभासद् तू मेरी सभा की धर्मयुक्त व्यवस्था का पालन कर और जो सभा के योग्य सभासद हैं वे भी सभा की व्यवस्था का पालन किया करें।

एक व्यक्ति को राज्य का स्वतंत्र अधिकार न देना चाहिए किन्तु राजा जो सभापति तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के अधीन रहें।

इसलिए किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिए। जैसे सिंह हृष्ट-पुष्ट पशु को मार कर खा लेते हैं वैसे ही स्वतंत्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक नहीं होने देता, प्रत्युत प्रजा के धन को लूट खसूट कर अन्याय से दण्ड देके अपना प्रयोजन पूरा करेगा।

जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ते है और जब दुष्टाचारी होते हैं, तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

महाविद्वानों को विद्यासभाधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्म सभाधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और जो उन सब में सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त महान् पुरुष हो उसको राजसभा का पति मान के सब प्रकार से उन्नति करें। तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के अधीन सब लोग वर्तें।

सभापति (राजा) के गुण

प्रजा राज्य संचालन के लिए सभापति (राजा) चुनना चाहिए। वह सभेश (राजा) ऐश्वर्य कर्ता, प्रिय, हृदय की बात जाननेहारा, पक्षपात रहित , न्याय , धर्म , विद्या का प्रकाशक , अन्याय का निरोधक, दुष्टों को दण्ड देने वाला, श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, राज्य कोष को पूर्ण करने वाला प्रतापी, विनययुक्त, जितेन्द्रिय और संयमी होना चाहिए।

राजसभासद् और मन्त्री

स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के जानने वाले, शूरवीर, सुपरीक्षित, उत्तम, धार्मिक, चतुर सचिव अर्थात् मन्त्री होने चाहिए। क्योंकि विशेष सहाय के बिना जो सुगम कर्म है वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है, तो महान् राज्य कर्म एक से कैसे हो सकता है? इसलिए एक राजा की बुद्धि पर राज्य के कार्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है। इससे सभापति को उचित है कि नित्यप्रति उन राज्य कर्मों में कुशल विद्वान् मन्त्रियों के साथ विचार किया करे। विचार इस प्रकार

विचार किया करे। विचार इस प्रकार करना कि उन सभासदों का पृथक् पृथक् अपना २ विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो, वह करना।

जितने मनुष्यों से राजकार्य सिद्ध हो सके उतने आलस्य रहित, बलवान और चतुर प्रधान पुरुषों को अधिकारी करे। इन के आधीन शूरवीर, बलवान् कुलोत्पन्न पवित्र भृत्यों को बड़े २ कर्मों में नियुक्त करे।

जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होने वाली बात को जानने हारा, सब शास्त्रों में विशारद है, उस दूत को भी रखे। वह ऐसा हो कि राज काम में अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रात्मा, बहुत समय की बात को न भूलने वाला, देश और कालानुकूल वर्तमान का कर्ता, सुन्दर रूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो, वही राजा का दूत होने में प्रशस्त है।

दूत उसको कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को फोड़ तोड़ देवे। दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट पड़े। वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थ से दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जान के वैसा प्रयत्न करे कि जिससे अपने को पीड़ा न हो।

पुरोहित और ऋत्विक् का स्वीकार इसलिए करे कि वे अग्निहोत्र आदि सब राजघर के कर्म किया करें और आप सदा राज कर्म में तत्पर रहे अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासन आदि कर्म है।

इस प्रकार तीन सभाओं द्वारा बनाए गए शासन विधान को

कार्यरूप में परिणत करने के लिए भिन्न २ विभागों और भिन्न २ राज्याधिकारियों की नियुक्ति राजा करे।

कर अर्थात् टैक्स

राजा वार्षिक कर आप्त पुरुषों के द्वारा ग्रहण करे। राजा और कर्मों का कर्ता राजपुरुष वा प्रजाजन सुखरूप फल से युक्त होवें वैसे विचार करके राजा तथा राजसभा राज्य में कर स्थापन करे जैसे जोंक, बछड़ा और भंवरा थोड़े २ भोग्यपदार्थ को ग्रहण करते हैं, वैसे राजा प्रजा से थोड़ा २ वार्षिक कर लेवे। अतिलोभ से अपने वा दूसरों के सुख के मूल को नष्ट कदापि न करे। राजाओं का प्रजापालन करना ही परमधर्म है।

राजा और प्रजा का सम्बन्ध

राजा प्रजा को अपने सन्तान के समान सुख देवे और प्रजा अपनेपिता के सदृश राजा और राजपुरुषों को जाने। यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है जो प्रजा न हो तो राजा किसका? और राजा न हो तो प्रजा किसकी कहावे? दोनों अपने २ काम में स्वतन्त्र और मिले हुए प्रीतियुक्त काम में परतन्त्र रहें। प्रजा की साधारण सम्मति के विरुद्ध राजा वा राजपुरुष न हों, राजा की आज्ञा के विरुद्ध राजपुरुष वा प्रजा न चले।

इस पर भी ध्यान रखना चाहिए कि 'यथा राजा तथा प्रजा' जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है। इसलिए राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त कर सबके सुधार का दृष्टान्त बनें।

दण्ड

जो राजा दण्डनीयों को दण्ड नहीं देता और अदण्डनीयों को

दण्ड देता है, उस राजा के राज्य में कभी शान्ति और सुख नहीं रहता। दण्ड को अच्छी प्रकार चलाने वाला धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि को प्राप्त करता है। जो लम्पट, क्षुद्र, नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है, वह दण्ड से ही मारा जाता है।

जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो बिना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है।

अतः दण्ड ही प्रजा का शासन कर्ता, सब प्रजा का रक्षक, सोते हुए मनुष्यों में जागता है, इसीलिए बुद्धिमान् लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं। बिना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न भिन्न हो जायं। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जाय। अतः जो पवित्र आत्मा सत्याचार और सत्पुरुषों का संगी यथावत् नीतिशास्त्र के अनुकूल चलनेहारा श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान् है वही न्यायरूपी दण्ड के चलाने में समर्थ होता है।

जिस राजा के राज में डाकू लोग रोती और विलाप करती हुई प्रजा के पदार्थों और प्राणों को हरते रहते हैं, उसका राज्य स्थिर नहीं रहता। दण्ड के यथावत् न होने से राज्य की सब मर्यादाएं छिन्न भिन्न हो जाती हैं और प्रजा दुःखी होती है।

न्यायशासन ठीक रूप से चलाने के लिए राजा का कर्त्तव्य है कि बड़े से बड़े अधिकारी, आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र और पुरोहित भी क्यों न हो, उसे भी पूरा दण्ड देवे। राजा से छोटे भृत्य पर्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजापुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिए जब राजा न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे।

इति षष्ठः समुल्लासः सम्पूर्णः

अथ सप्तमः समुल्लासः

ईश्वर - वेद विषय

जो सब दिव्य गुण कर्म स्वभाव विद्यायुक्त और जिसमें पृथिवी सूर्यादि लोक स्थित हैं और जो आकाश के समान व्यापक सब देवों का देव परमेश्वर है उसको जो मनुष्य न जानते न मानते और न उसका ध्यान करते व नास्तिक मन्दमति सदा दुःखसागर में डूबे ही रहते हैं। इसलिए सर्वदा उसी को जानकर सब मनुष्य सुखी होते हैं।

प्रश्न - वेद में ईश्वर अनेक हैं। इस बात को तुम मानते हो वा नहीं ?

उत्तर - नहीं मानते, क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है।

प्रश्न - वेदों में जो अनेक देवता लिखे हैं उसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर - देवता दिव्यगुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं। जैसे कि पृथिवी। परन्तु इस को कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। यह उनकी भूल है जो देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवों का देव होने से महादेव इसीलिए कहाता है कि वही सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता, न्यायाधीश, अधिष्ठाता है। जो 'त्रयस्त्रिंशत् त्रिशता०' इत्यादि वेदों में प्रमाण है तैंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से ये आठ वसु।

प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इस लिए कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन कराने वाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने आदित्य इसलिए हैं कि ये सब की आयु को लेते जाते हैं। बिजुली का नाम इन्द्र इस हेतु है कि परम ऐश्वर्य का हेतु है। यज्ञ को प्रजापति कहने का कारण यह है जिससे वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तेंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से देव कहाते हैं। इनका स्वामी और सब से बड़ा होने से परमात्मा चौंतीसवां उपास्यदेव शतपथ के चौदहवे काण्ड में स्पष्ट लिखा है।

ईश्वर सिद्धि

प्रश्न - आप ईश्वर २ कहते हो परन्तु उस की सिद्धि किस प्रकार करते हो?

उत्तर - सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानं अव्यपदेश्यं अव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्॥ न्याय. 1/4

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिहवा, घ्राण और मन का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख, दुःख, सत्यासत्य विषयों के सम्बन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको प्रत्यक्ष कहते हैं, परन्तु वह निर्भ्रम हो। अब विचारना चाहिए कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है गुणी का नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रुप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथिवी उसका आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। और जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों

को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है उस समय जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाता है। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है, वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है। और जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सन्देह है? क्योंकि कार्य को देख के कारण का अनुमान होता है।

प्रश्न - ईश्वर व्यापक है वा किसी देश विशेष में रहता है?

उत्तर — व्यापक है, क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का स्रष्टा, सब का धर्ता और प्रलय कर्ता नहीं हो सकता। अप्राप्त देश में कर्ता की क्रिया असम्भव है।

प्रश्न — ईश्वर साकार है वा निराकार?

उत्तर - निराकार क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक नहीं हो सकता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते। क्योंकि परिमित वस्तु में गुण, कर्म, स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण क्षुधा, तृष्णा, रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आंख आदि अवयवों का बनानेहारा दूसरा होना चाहिए। क्योंकि जो

संयोग से उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिए। जो कोई यहां ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था। इसलिए परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता। किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।

प्रश्न - ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं ?

उत्तर - है, परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान् का अर्थ जानते हो वैसा नहीं। अपितु ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय, आदि और सब जीवों के पुण्य पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता। अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।

स्तुति - प्रार्थना - उपासना

स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना है।

जब मनुष्य इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तः करण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़कर मुक्ति तक पहुंच जाता है। जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।

जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष

दु:ख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वाभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना अवश्य करनी चाहिए।

प्रश्न - जब परश्मेवर के श्रोत्र, नेत्रादि इन्द्रियां नहीं हैं फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है ?

उत्तर — परमेश्वर के हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथ से सबका रचन ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सबको यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बातें सुनता, अन्त: करण नहीं परन्तु सब जगत् को जानता है और उसको अवधि सहित जानने वाला कोई भी नहीं। उसी को सनातन, सबसे श्रेष्ठ, सबमें पूर्ण होने से पुरुष कहते हैं। वह इन्द्रियों और अन्त: करण से होने वाले काम अपने सामर्थ्य से करता है।

प्रश्न — ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं ?

उत्तर — नहीं, परमेश्वर जन्म कभी नहीं लेता।

यदा यदा हि धर्मस्य ......॥ गीता 4/7 की यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। और ऐसा हो सकता है कि श्री कृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-2 में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करुं तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि 'परोपकाराय सतां विभूतय:' परोपकार के लिए सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है। तथापि इस से श्री कृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

प्रश्न — जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके ?

उत्तर — प्रथम जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार, शरीर धारण किए विना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है। जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला उस अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव युक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव को मारने के लिए जन्ममरणयुक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है और जो कोई कहे कि भक्तजनों के उद्धार करने के लिए जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं। क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है।

इसलिए ईश्वर का आना, जाना, जन्म, मरण, कभी सिद्ध नहीं हो सकता। 'ईसा' आदि भी ईश्वर के अवतार नहीं; ऐसा समझ लेना। क्योंकि राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, दुःख, सुख, जन्म, मरण आदि गुणयुक्त होने से मनुष्य थे।

प्रश्न — ईश्वर सगुण है वा निर्गुण ?

उत्तर — दोनों प्रकार का है। जैसे जड़ के रूपादि गुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में नहीं हैं वैसे चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं हैं। इसलिए जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। अपने-2 स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं। कोई पदार्थ ऐसा नहीं है कि जिसमें केवल निर्गुणता या केवल सगुणता हो किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर

अनन्त ज्ञान, बलादि गुणों से सहित होने से सगुण रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है।

प्रश्न — संसार में निराकार को निर्गुण और साकार को सगुण कहते हैं अर्थात् परमेश्वर जब जन्म नहीं लेता तब निर्गुण और जब अवतार लेता है तब सगुण कहाता है।

उत्तर — यह कल्पना केवल अज्ञानी और अविद्वानों की है। जिनको विद्या नहीं होती वे पशु के समान बर्ड़ाया करते हैं। जैसे सन्निपात ज्वरयुक्त मनुष्य अण्डबण्ड बकता है वैसे ही अविद्वानों के कहे वा लेख को व्यर्थ समझना चाहिए।

वेद

जो स्वयंभू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है वह सनातन जीवरूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेशकरता है।

प्रश्न — जब परमेश्वर निराकार है तो वेद विद्या का उपदेश विना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सका होगा? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिए।

उत्तर — परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेदविद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है। क्योंकि मुख जिह्वा से उच्चारण अपने से भिन्न के बोध के लिए किया जाता है, कुछ अपने लिए नहीं। क्योंकि मुख जिह्वा के विना ही मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। वैसे जीवों को अन्तर्यामी रूप से उपदेश किया है। जब परमेश्वर निराकार

सर्वव्यापक है तो अपनी अखिल वेद विद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में प्रकाशित कर देता है। फिर मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरों को सुनाता है। इस लिए ईश्वर में यह दोष नहीं आ सकता।

प्रश्न — किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया?

उत्तर — प्रथम सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक्-2 वेद का प्रकाश किया।

ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा से ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद को ग्रहण किया।

प्रश्न — उन चारों में ही वेद का प्रकाश किया, अन्य में नहीं, इससे ईश्वर पक्षपाती होता है।

उत्तर — वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे। अन्य उनके सदृश नहीं थे। इस लिए पवित्र विद्या का प्रकाश उन्हीं में किया।

प्रश्न — वेद ईश्वर कृत हैं अन्य कृत नहीं, इसमें क्या प्रमाण?

उत्तर — जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्ध गुणकर्म स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुण वाला है वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वर कृत अन्य नहीं, और जिसमें सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो वह ईश्वरोक्त। जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टिक्रम रखा है वैसा ही ईश्वर,

सृष्टिकार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होवे वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है। इस प्रकार के वेद हैं। अन्य बाइबल, कुरान आदि पुस्तकें नहीं।

प्रश्न - वेद को ईश्वर से होने की आवश्यकता कुछ भी नहीं, क्योंकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे।

उत्तर - कभी नहीं बना सकते। क्योंकि बिना कारण के कार्योत्पत्ति का होना असम्भव है। जैसे जंगली मनुष्य सृष्टि को देख कर भी विद्वान् नहीं होते और जब उनको कोई शिक्षक मिल जाय तो विद्वान् हो जाते हैं, और अब भी किसी से पढ़े बिना कोई भी विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदि सृष्टि के ऋषियों को वेद विद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते। इसका दृष्टान्त जंगली भील आदि हैं।

जब तक आर्यावर्त देश से शिक्षा नहीं गई थी तब तक मिश्र यूनान और यूरोप देश आदिस्थ मनुष्यों में कुछ भी विद्या नहीं हुई थी। पुनः सुशिक्षा के पाने से विद्वान् हो गए हैं। वैसे ही परमात्मा से सृष्टि के आदि में विद्या शिक्षा की प्राप्ति से उत्तरोत्तर काल में विद्वान् होते गए।

जैसे वर्तमान समय में हम लोग अध्यापकों से पढ़ के ही विद्वान् होते हैं वैसे परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए अग्नि आदि ऋषियों का गुरु अर्थात् पढ़ानेहारा है।

प्रश्न - वेद किन ग्रन्थों का नाम है?

उत्तर - ऋक्, यजु, साम और अथर्व मन्त्र संहिताओं का, अन्य

का नहीं।

मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का नाम वेद नहीं। वस्तुत: वेद मन्त्रभाग और ब्राह्मण व्याख्या भाग है।

ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं। वेदों में किसी का .इतिहास नहीं किन्तु जिस २ शब्द से विद्या का बोध होवे उस २ शब्द का प्रयोग किया है। किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं।

प्रश्न - वेदों की कितनी शाखा हैं?

उत्तर - ग्यारह सौ सत्ताइस। व्याख्यान को शाखा कहते हैं। शाखाएं आश्वलायन आदि ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं और मन्त्र संहिता परमेश्वर के नाय से प्रसिद्ध हैं।

जैसे माता पिता अपने सन्तानों पर कृपादृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार भमजाल से छूटकर विद्या विज्ञानरूप पूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायं।

प्रश्न - वेद नित्य हैं वा अनित्य ?

उत्तर - नित्य हैं, क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्य के अनित्य होते हैं।

जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके और जो कुछ वेदों में कहा है हम उसको मानते हैं।

इति सप्तम: समुल्लास: सम्पूर्ण:

आचार्य धर्मवीर आर्य

अथ अष्टमः समुल्लासः

सृष्टि-उत्पत्ति स्थिति प्रलय

हे मनुष्य! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है जो धारण और प्रलय करता है जो इस जगत् का स्वामी, जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है।

यह सब जगत् सृष्टि के पहले अन्धकार से आवृत्त, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एकदेशी आच्छादित था पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारणरूप से कार्यरूप कर दिया।

प्रश्न — यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है वा अन्य से ?

उत्तर — निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है। परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है।

प्रश्न — क्या प्रकृति परमात्मा ने उत्पन्न नहीं की ?

उत्तर - नहीं, वह अनादि है।

प्रश्न — अनादि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं ?

उत्तर — ईश्वर, जीव, और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं।

सत्यव, रज और तम की साम्यावस्था प्रकृति है।

प्रश्न — जगत् के कारण कितने होते हैं ?

उत्तर — तीन; एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से

कुछ बने, न बनाने से न बने। आप स्वयं बने नहीं दूसरे को प्रकारान्तर से बना देवे। दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके विना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होके बने और विगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो।

निमित्त कारण दो प्रकार के हैं। एक — सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने तथा सबकी व्यवस्था करने वाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा। दूसरा — परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेक विध कार्यान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव।

उपादान कारण प्रकृति, परमाणु जिसको सब के बनाने की सामग्री कहते हैं, वह जड़ होने से अपने आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है।

कहीं कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ जाता है जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं, परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना और बिगड़ना परमेश्वर और जीव के अधीन है।

इन तीन कारणों के विना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है।

प्रश्न- नवीन वेदान्ती लोग केवल परमेश्वर ही को जगत् का अभिन्न निमित्त — उपादान कारण मानते हैं जैसे मकड़ी बाहर से कोई पदार्थ नहीं लेती, अपने में से ही तन्तु निकाल जाला बना

कर आप ही उसमें खेलती है वैसे ब्रह्म अपने में से जगत् को बना आप जगदाकार बन आप ही क्रीड़ा कर रहा है।

उत्तर — जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादान कारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी, अवस्थान्तरयुक्त विकारी हो जावे। और उपादान कारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं, तो ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप, जगत कार्यरूप से असत् जड़ और आनन्द रहित, ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है। ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है। ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्डरूप है। जो ब्रह्म से पृथिव्यादि कार्य उत्पन्न होवे तो पृथिव्यादि में कार्य के जड़ादि गुण, ब्रह्म में भी होवें अर्थात् जैसे पृथिवी आदि जड़ हैं वैसा ब्रह्म भी जड़ हो जाय और जैसा परमेश्वर चेतन है वैसा पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होना चाहिए।

जो मकड़ी का दृष्टान्त दिया वह तुम्हारे मत का साधक नहीं किन्तु बाधक है। क्योंकि वह जड़रूप शरीर तन्तु का उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है। वैसे ही व्यापक ब्रह्म अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारण से स्थूल जगत् को बनाकर बाहर स्थूलरूप कर आप उसी में व्यापक होके साक्षीभूत आनन्दमय हो रहा है।

प्रश्न — जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है तो वह कारण और जीव को भी उत्पन्न कर सकता है। जो नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान् भी नहीं रह सकता।

उत्तर —क्या सर्वशक्तिमान् वह कहाता है जो असम्भव बात को भी कर सके ? जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसा अग्नि उष्ण, जल शीतल और पृथिव्यादि सब जड़ों को विपरीत गुण वाले ईश्वर

भी नहीं कर सकता। ईश्वर के नियम सत्य और पूरे हैं इसलिए परि-वर्तन नहीं कर सकता अतः सर्वशक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा बिना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है।

प्रश्न — क्या कारण के बिना परमेश्वर कार्य को नहीं कर सकता ?

उत्तर — नहीं, क्योंकि जिसका अभाव अर्थात् जो वर्तमान नहीं है उसका भाव वर्तमान होना सर्वथा असम्भव है। जैसा कोई गपोड़ा हांक दे कि मैंने वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह देखा परन्तु यह कथन मिथ्या ही है। अतः कारण के बिना कार्य असम्भव ही है।

प्रश्न — जो कारण के बिना कार्य नहीं होता तो कारण का कारण कौन है ?

उत्तर — मूल का मूल अर्थात कारण का कारण नहीं होता। जो केवल कारण रूप ही हैं वे कार्य किसी के नहीं होते। जो आदि कारण प्रकृति है वह अनादि है।

प्रश्न — जब कारण के बिना कार्य नहीं होता तो कारण का कारण क्यों नहीं ?

उत्तर - अरे भोले भाइयों ! कुछ अपनी बुद्धि को काम में क्यों नहीं लाते ? देखो, संसार में दो पदार्थ होते हैं - एक कारण दूसरा कार्य। जो कारण है वह कार्य नहीं और जिस समय कार्य है वह कारण नहीं। जब तक मनुष्य सृष्टि को यथावत् नहीं समझता तब तक उसको यथावत् ज्ञान प्राप्त नहीं होता। क्या आँख की आंख, दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य कभी हो सकता है ? जो जिससे उत्पन्न होता है वह कारण को कार्यरूप करने हारा है वह कर्ता कहाता है।

जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा उन परमसूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है उसकी प्रथम अवस्था में जो परम सूक्ष्म प्रकृतिरूप कारण से कुछ स्थूल होता है उसका नाम महत् तत्व और जो उससे कुछ स्थूल होता है उसका नाम अहंकार और अहंकार से भिन्न २ पांच सूक्ष्मभूत, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण, पांच ज्ञान इन्द्रियां, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा ये पांच कर्म इन्द्रियां हैं और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है और उन पंचतन्मात्राओं से अनेक स्थूल अवस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पांच स्थूलभूत जिनको हम प्रत्यक्ष देखते हैं, उत्पन्न होते हैं। उनसे नाना प्रकार की ओषधियां वृक्ष आदि, उनसे अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है। परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर परमात्मा बना कर उनमें जीवों का संयोग कर देता है तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है

आदि सृष्टि में ईश्वर ने मनुष्यों को युवावस्था में उत्पन्न किया क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालने के लिए दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिए युवावस्था में सृष्टि की है।

प्रश्न - कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं ?

उत्तर - नहीं, जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन, तथा दिन के पीछे रात, और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय, और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय, और प्रलय के आगे सृष्टि, अनादि काल से चक्र चला आता है। इसका आदि वा अन्त नहीं। किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है उसी प्रकार

सृष्टि और प्रलय का आरम्भ और अन्त होता रहता है। क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं वैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति वर्तमान प्रवाह से अनादि हैं।

प्रश्न - मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई ?

उत्तर - त्रिविष्टप् अर्थात् जिसको तिब्बत कहते हैं।

प्रश्न - आदि सृष्टि में एक जाति थी वा अनेक ?

उत्तर - एक मनुष्य जाति थी। पश्चात् श्रेष्ठों का आर्य, विद्वान्, देव और दुष्टों के दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से आर्य और दस्यु दो नाम हुए।

प्रश्न - फिर वे यहां कैसे आए ?

उत्तर - जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव, अविद्वान् जो असुर उनमें सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया। जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के खण्ड को जानकर यहीं आकर बसे। इसी से इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ। यह आर्यावर्त देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया।

प्रश्न - प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें कौन बसते थे ?

उत्तर - इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। क्योंकि आर्य लोग सृष्टि के आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देश में आकर बसे थे।

किसी संस्कृत ग्रन्थ वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आए और यहां के जंगलियों को लड़कर, जय पाके निकाल इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो

सकता है ?

इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पाण्डव तक सर्व भूगोल में आर्यों का राज्ज और वेदों का थोड़ा २ प्रचार आर्यावर्त से भिन्न देशों में भी रहता था।

परन्तु अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि और उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।

परन्तु भिन्न २ भाषा, पृथक् २ शिक्षा अलग २ व्यवहार का विरोध छूटना अतिदुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिए जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं, उसी का मान्य करना भद्रपुरुषों का काम है।

प्रश्न - पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर ?

उत्तर - घूमते हैं। यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिए भूमि घूमा करती है।

जो सविता अर्थात् सूर्य सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से सह वर्तमान, अपनी परिधि में घूमता रहता है किन्तु किसी लोक

के चारों ओर नहीं घूमता।

पृथिव्यादि लोक घूम कर जितना भाग सूर्य के सामने आता उतने में दिन और जितना पृष्ठ में अर्थात् आड़ में होता जाता है, उतने में रात। जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथिवी नहीं घूमती वे सब अज्ञ हैं, क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते। सूर्य पृथिवी से लाखों गुना बड़ा और क्रोड़ों कोश दूर है। जैसे राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता वैसे ही पृथिवी के घूमने से यथायोग्य दिन रात होता है, सूर्य के घूमने से नहीं। जो सूर्य को स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं। क्योंकि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थान से दूसरी राशि अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता। क्योंकि गुरु पदार्थ बिना घूमे आकाश में नियत स्थान पर कभी नहीं रह सकता।

इति सप्तमः समुल्लासः सम्पूर्णः

धर्म की ध्वजा

उठाए ध्वजा धर्म की हम फिरेंगे,
उसी के लिए हम जियेंगे, मरेंगे।
जगायेंगे सबको मधुर गीत गाकर,
बितायेंगे जीवन को सच्चा बनाकर।
उठायेंगे आवाज सच्ची सदा हम,
बनायेंगे फिर स्वर्ग संसार को हम
कहेगा तभी भक्ति से विश्व सारा,
वही वृद्ध भारत गुरु है हमारा॥

अथ नवमः समुल्लासः

विद्या और अविद्या

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।

अविद्या का लक्षण

जो अनित्य संसार और देहादि में नित्य अर्थात् जो कार्य जगत् देखा सुना जाता है, सदा रहेगा, सदा से है और योगबल से यही देवों का शरीर सदा रहता है ऐसी विपरीत बुद्धि होना अविद्या का प्रथम भाग है। अशुचि अर्थात् मलमय स्त्री आदि के शरीर और मिथ्याभाषण चोरी आदि अपवित्र में पवित्र बुद्धि दूसरा; अत्यन्तविषयसेवनरूप दुःख में सुख बुद्धि आदि तीसरा; अनात्मा में आत्मबुद्धि करना अविद्या का चौथा भाग है। यह चार प्रकार का विपरीत ज्ञान अविद्या कहाती है।

विद्या का लक्षण

इसके विपरीत अर्थात् अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र और पवित्र में पवित्र, दुःख में दुःख और सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना विद्या है।

जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिससे तत्त्व स्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या कहाती है।

मोक्ष और बन्ध

बिना शुद्ध कर्म और परमेश्वर की उपासना के मृत्यु दुःख के पार कोई नहीं होता अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म, पाषाणमूर्त्यादि की उपासना और मिथ्याज्ञान से बन्ध होता है। इसलिए धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कर्म करना और मिथ्याभाषणादि अधर्म को छोड़ देना ही मुक्ति का साधन है।

प्रश्न — मुक्ति किसको कहते हैं ?

उत्तर — " मुञ्चन्ति पृथग् भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः " जिसमें छूट जाना हो उसका नाम मुक्ति है।

प्रश्न — मुक्ति और बन्ध किन-2 बातों से होता है ?

उत्तर — परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित न्याय, धर्म की वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने पढ़ाने, और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सबसे उत्तम साधनों को करने से मुक्ति और इनसे विपरीत ईश्वराज्ञाभंग करने आदि काम से बन्ध होता है।

प्रश्न — मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है ?

उत्तर — विद्यमान रहता है। जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है, उसी में मुक्त जीव अव्याहत गति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं, विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है।

मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़ कर संकल्पमय शरीर से आकाश में परमेश्वर में विचरते हैं। क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं वे सांसारिक दुःख से रहित नहीं हो सकते। जो शरीर रहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है उसको सांसारिक सुख दुःख का स्पर्श भी नहीं होता, किन्तु सदा आनन्द में रहता है।

मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते, किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं। जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के संकल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गन्ध के लिए घ्राण, संकल्प विकल्प करते समय मन, निश्चय करने के लिए बुद्धि स्मरण करने के लिए चित्त और अहंकार के अर्थ अहंकार रूप अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और संकल्पमात्र शरीर होता है। जैसे शरीर के आधार रह कर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है, वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है।

प्रश्न - जीव मुक्ति को प्राप्त होकर पुनः जन्म मरण रूप दुःख में कभी आते हैं वा नहीं? क्योंकि मुक्ति वही है जिससे निवृत्त होकर पुनः संसार में कभी नहीं आता।

उत्तर - यह बात ठीक नहीं, क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है।

वस्तुतः मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं।

क्योंकि जीव का सामर्थ्य शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं पुनः उनका फल अनन्त कैसे हो सकता है? अनन्त आनन्द

को भोगने का असीम सामर्थ्य, कर्म और साधन जीवों में नहीं। इसलिए अनन्त सुख नहीं भोग सकते। और जो मुक्ति में से कोई लौट कर जीव इस संसार में न आवे तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव निःशेष हो जाने चाहिए।

प्रश्न - जब ऐसा है तो मुक्ति भी जन्म मरण के सदृश है। इसलिए श्रम करना व्यर्थ है।

उत्तर - मुक्ति जन्म मरण के सदृश नहीं, क्योंकि जब तक 36000 (छत्तीस सहस्र) बार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति के आनन्द में रहना, दुःखों का न होना क्या छोटी बात है? जब आज खाते पीते हो कल भूख लगने वाली है पुनः इसका उपाय क्यों करते हो? जैसे मरना अवश्य है तो भी जीवन का उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौटकर, जन्म में आना है तथापि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है।

प्रश्न - मनुष्य और अन्य पशु आदि के शरीर में जीव एक सा है वा भिन्न २ जाति के?

उत्तर - जीव एक से हैं, परन्तु पाप पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं।

जब पाप बढ़ जाता, पुण्य न्यून होता है तब मनुष्य का जीव पशु आदि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता और जब पुण्य पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्य जन्म होता है। इस में भी पुण्य पाप के उत्तम मध्यम और निकृष्ट होने से मनुष्य आदि में भी उत्तम मध्यम और निकृष्ट शरीरादि सामग्री वाले होते हैं।

जब अधिक पाप का फल पशु आदि शरीर में भोग लिया है पुनः पाप पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता और पुण्य के फल भोग कर फिर भी मध्यस्थ मनुष्य के शरीर में आता है।

जो स्त्री के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री और पुरुष के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है। इसी प्रकार नाना प्रकार के जन्म मरण में तब तक जीव पड़ा रहता है कि जब तक उत्तम कर्मोपासना ज्ञान को करके मुक्ति को नहीं पाता। क्योंकि उत्तम कर्मादि करने से मनुष्यों में उत्तम जन्म और मुक्ति में महाकाल पर्यन्त जन्म मरण दुःखों से रहित होकर आनन्द में रहता है।

मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान यथावत् होता है। यही सुख विशेष स्वर्ग और विषयतृष्णा में फंसकर दुःख विशेष भोग करना नरक कहाता है। जो सांसारिक सुख है वह सामान्य स्वर्ग और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है वही विशेष स्वर्ग कहाता है।

सब जीव स्वभाव से सुख प्राप्ति की इच्छा और दुःख का वियोग होना चाहते हैं। परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते तब तक उनको सुख मिलना और दुःख का छूटना न होगा।

जैसे मूल कट जाने से बृक्ष नष्ट होता है वैसे पाप के छोड़ने से दुःख नष्ट होता है।

जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सबके द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवत्मा की स्थिति होती है।

प्रश्न - मुक्ति एक जन्म में होती है वा अनेक जन्मों में ?

उत्तर — अनेक जन्मों में क्योंकि जब इस के हृदय की अविद्या अज्ञानरूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं। तभी उस परमात्मा, जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, उसमें निवास करता है।

प्रश्न — मुक्ति में जीव परमेश्वर में मिल जाता है वा पृथक् रहता है?

उत्तर — पृथक् रहता है। क्योंकि जो मिल जाय तो मुक्ति का सुख कौन भोगे?

जो जीवात्मा अपनी बुद्धि और आत्मा में स्थित सत्य ज्ञान और अनन्त आनन्द स्वरूप परमात्मा को जानता है वह उस व्यापकरूप ब्रह्म में स्थित होके उस अनन्तविद्यायुक्त ब्रह्म के साथ सब कामों को प्राप्त होता है अर्थात् जिस-2 आनन्द की कामना करता हैं उस 2 आनन्द को प्राप्त होता है। यही मुक्ति कहाती है।

इति नवम: समुल्लास: सम्पूर्ण:

"स्वामी दयानन्द महान् सुधारक और प्रखर क्रांतिवादी महापुरुष तो थे ही, साथ ही उनके हृदय में सामाजिक अन्यायों को उखाड़ फेंकने की प्रचण्ड अग्नि भी विद्यमान थी। उनकी शिक्षाओं का हम सबके के लिए भारी महत्व है क्योंकि आज भी हमारे समाज में बहुत सी विभेदकारी बातें विद्यमान हैं। उनका सामना महर्षि दयानन्द के बताए हुए मार्ग पर चल कर ही किया जा सकता है।"

— डॉ० राधाकृष्णन्

अथ दशमः समुल्लासः

आचार-अनाचार

जो धर्मयुक्त कामों का आचरण सुशीलता, सत्पुरुषों का संग और सद्विद्या के ग्रहण में रुचि आदि आचार और इनसे विपरीत अनाचार कहाता है।

मनुष्यों को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिसका सेवन राग द्वेष रहित विद्वान् लोग नित्य करें, जिसको हृदय अर्थात् आत्मा से सत्य कर्त्तव्य जानें, वही धर्म माननीय और करणीय है।

इसलिए सम्पूर्ण वेद, मनुस्मृति तथा ऋषि प्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और जिस२ कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा जिनमें न हो, उन कर्मों का सेवन करना उचित है। देखो! जब कोई मिथ्याभाषण, चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उसके आत्मा में भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है। इसलिए वह कर्म करने योग्य नहीं।

वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रियाचरण ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है।

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं उनको रोकने में प्रयत्न करे, जैसे घोड़े को सारथी रोक कर शुद्ध मार्ग पर चलाता है, उसी प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्ममार्ग से हटा के धर्ममार्ग में सदा चलाया करे।

पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवें मन को अपने वश में करके युक्ताहारविहार योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब अर्थों को सिद्ध करे।

एक धन, दूसरे बन्धु कुटुम्ब कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पांचवीं श्रेष्ठ विद्या ये पांच मान्य के स्थान हैं। परन्तु धन से उत्तम बन्धु, बन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से पवित्र विद्या वाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं।

चाहे सौ वर्ष का भी हो परन्तु जो विद्या विज्ञान रहित है वह बालक और जो विद्या विज्ञान का दाता है उस बालक को भी वृद्ध मानना चाहिए। क्योंकि सब शास्त्र, आप्त, विद्वान् अज्ञानी को बालक और ज्ञानी को पिता कहते हैं।

अधिक वर्षों के बीतने, श्वेत बाल के होने, अधिक धन से और बड़े कुटुम्ब के होने से वृद्ध नहीं होता। किन्तु ऋषि महात्माओं का यही निश्चय है कि जो हमारे बीच में विद्या विज्ञान में अधिक है, वही वृद्ध पुरुष कहाता है।

अतः विद्या पढ़ विद्वान् धर्मात्मा होकर निर्वैरता से सब प्राणियों के कल्याण का उपदेश करें और उपदेश से वाणी मधुर और कोमल बोले। सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं।

नित्य स्नान, वस्त्र, अन्न, पान, स्थान शुद्ध रखें क्योंकि इनके शुद्ध होने से चित्त की शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है। शौच उतना करना योग्य है कि जितने से मल दुर्गन्ध दूर हो जाय।

जो सत्यभषणादि कर्मों का आचरण करना है वही वेद और स्मृति में कहा हुआ आचार हैं।

माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करना देवपूजा कहाती है और जिस २ कर्म से जगत् का उपकार हो वह वह कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य कर्म हैं। जो आप्त सत्यवादी धर्मात्मा परोपकारप्रिय जन हैं उनका सदा संग करने का नाम ही श्रेष्ठाचार है।

प्रश्न — आर्यावर्त देशवासियों का आर्यावर्त देश से भिन्न २ देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है वा नहीं ?

उत्तर — यह बात मिथ्या है। क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी, सत्यभाषणादि आचरण करना है वह जहां कहीं करेगा, आचार और धर्म भ्रष्ट कभी न होगा। और जो आर्यावर्त में रह कर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचारभ्रष्ट कहावेगा।

प्रथम आर्यावर्त देशीय लोग व्यापार, राजकार्य और भ्रमण के लिए सब भूगोल में घूमते थे। जो आजकल छूतछात और धर्म भ्रष्ट होने की शंका है वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। जो मनुष्य देश देशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में जाने आने में शंका नहीं करते वे देश देशान्तर के अनेक विध मनुष्यों के समागम, रीति-भांति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय शूरवीर होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छकुलोत्पन्न वेश्यादि के समागम से आचारभ्रष्ट धर्महीन नहीं होते किन्तु देशदेशान्तर के

उत्तम पुरुषों के साथ समागम में छूत और दोष मानते हैं !! यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो क्या है ?

हां, इतना कारण तो है कि जो लोग मांसभक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं। इसलिए उनके संग करने से आर्यों को भी यह कुलक्षण न लग जायं, यह तो ठीक है। परन्तु इनसे व्यवहार और गुणग्रहण करने में कोई भी दोष वा पाप नहीं है किन्तु इनके मद्यपानादि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें तो कुछ भी हानि नहीं। जब इन के स्पर्श और देखने से भी मूर्खजन पाप गिनते हैं। इसी से उनसे युद्ध कभी नहीं कर सकते क्योंकि युद्ध में उनको देखना और स्पर्श होना अवश्य है।

सज्जन लोगों को राग, द्वेष, अन्याय मिथ्याभाषण आदि दोषों को छोड़ निर्वैर प्रीति परोपकार सज्जनता आदि का धारण करना उत्तम आचार है।

भक्ष्य और अभक्ष्य

जो जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें। जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमांस के परमाणुओं से ही पूरित है उनके हाथ का न खावें।

जहां भोजन करें उस स्थान को धोने, लेपन करने, झाड़ू लगाने, कूरा कर्कट दूर करने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

उपकारक प्राणियों अर्थात् दूध देने वाले पशुओं को न मारें न मारने दें। जैसे गाय बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंसें भी हैं। परन्तु गाय के दूध घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं उतने

भैंस के दूध से नहीं।

देखो! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे तभी दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुतायत होने से अन्न रस पुष्कल होते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है।

प्रश्न — जो सभी अहिंसक हो जायं तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायं कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायं। तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाय।

उत्तर — यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों, उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर दें।

प्रश्न — फिर क्या उनका मांस फेंक दे?

उत्तर — चाहे फेंक दें चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं। किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। जितना हिंसा, चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है।

जिन पदार्थों से स्वास्थ्य रोगनाश बुद्धि बल पराक्रम वृद्धि और आयु वृद्धि होवे उन तण्डुलादि, गोधूम, फल, मूल, कन्द, दूध, घी, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक, मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं उन 2

का सर्वथा त्याग करना और जो २ जिसके लिए विहित है उन २ पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।

न किसी को अपना जूंठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे, न अधिक भोजन करे और न भोजन किए पश्चात् हाथ मुंह धोये विना कहीं इधर उधर जाय।

प्रश्न — चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठ के ?

उत्तर — जहां पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे वहां भोजन करना चाहिए।

परन्तु आवश्यक युद्धादिकों में तो घोड़े आदि यानों पर बैठ के वा खड़े 2 भी खाना पीना अत्यन्त उचित है।

प्रश्न — क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ?

उत्तर — जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं।

देखो ! महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा, ऋषि, महर्षि आए थे। एक ही पाकशाला में भोजन किया करते थे। क्योंकि उस समय सर्व भूगोल में वेदोक्त एक मत था। उसी में सबकी निष्ठा थी। एक दूसरे का सुख दुःख हानि लाभ आपस में अपने समान समझते थे। तभी भूगोल में सुख था। अब तो बहुत से मत वाले होने से बहुत सा दुःख और विरोध बढ़ गया है। इसका निवारण करना बुद्धिमानों का काम है। परमात्मा सबके मन में सत्यमत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों। इसमें सब विद्वान् लोग विचार कर विरोध भाव छोड़ के आनन्द को बढ़ावें।

इति दशमः समुल्लासः सम्पूर्णः

उत्तरार्धः

अनुभूमिका

यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था, क्योंकि वेदोक्त सत्य बातें विद्या से अविरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने के कारण महाभारत युद्ध हुआ। इनकी अप्रवृत्ति से, अविद्यान्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया वैसा मत चलाया। इन सब मतवादियों, इनके चेलों और अन्य सबको परस्पर सत्यासत्य के विचार करने में अधिक परिश्रम न हो, इसलिए यह ग्रन्थ बनाया है। जो २ इसमें सत्य मत का मण्डन और असत्य मत का खण्डन लिखा है वह सबको जनाना ही प्रयोजन समझा गया है।

पक्षपात छोड़कर इसको देखने से सत्यासत्य मत सबको विदित हो जायगा। पश्चात् सबको अपनी २ समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण करना और असत्य मत का छोड़ना सहज होगा।

जो पुराणादि ग्रन्थों से शाखा शाखान्तर रूप मत आर्यावर्त देश में चले हैं उनका संक्षेप से गुणदोष इस समुल्लास में दिखाया जाता है। मेरा तात्पर्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्यायदृष्टि से वर्तना अति उचित है। मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य का निर्णय करने कराने के लिए है, न कि वाद-विवाद विरोध करने कराने के लिए। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो २ अनिष्ट फल हुए, होते है और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य

जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा।

यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सब को विरोध जाल में फंसा रखा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंस कर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत हो जावें। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एक मत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे।

इत्यलम्

खण्डन मण्डन का औचित्य

युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने प्रथम दस समुल्लासों में वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन करने के पश्चात् यह आवश्यक समझा कि धर्म के नाम पर जो अवैदिक मतमतान्तर देश में फैले हुए हैं उनका खण्डन भी किया जाय।

पहले वैदिक धर्म का मण्डन फिर अवैदिक मतों का खण्डन यही ऋषि की शैली है। मण्डन जितना आवश्यक है खण्डन उससे कम आवश्यक नहीं। किसी सुन्दर उद्यान के निर्माण के लिए उसमें सुन्दर वृक्षों का आरोपण जितना आवश्यक है, जंगली घास फूस और कंटीली झाड़ियों का उच्छेदन भी उतना ही आवश्यक है।

महर्षि का उद्देश्य किसी के हृदय को चोट पहुंचाना नहीं प्रत्युत सत्यासत्य का निर्णय कर जनता में नीर क्षीर विवेक बुद्धि पैदा करना है।

सम्पर्क - 9029421718

अथ एकादशः समुल्लासः

आर्यावर्तीयमत खण्डनमण्डन

यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसी लिए इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है। क्योंकि यही सुवर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिए सृष्टि के आदि में आर्य लोग यही आकर बसे।

सृष्टि से लेके पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एक मात्र राज्य था अन्य देश में माण्डलिक अर्थात् छोटे २ राजा रहते थे। महाराजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्ध पर्यन्त यहां के राज्याधीन सब राज्य थे।

स्वायंभुव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गए। क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता।

ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया। क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह ?

जब बड़े २ विद्वान्, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि लोग महाभारत युद्ध में बहुत से मारे गए और बहुत से मर गए तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान आपस में करने लगे। जो बलवान् हुआ वह देश को दाब कर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त देश में खण्ड

खण्ड राज्य हो गया। पुनः द्वीपद्वीपान्तर के राज्य की व्यवस्था कौन करे ?

जब ब्राह्मण लोग विद्याहीन हुए तब क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अविद्वान होने में तो कथा ही क्या कहनी ? जो परम्परा से वेदादि शास्त्रों का अर्थ सहित पढ़ने का प्रचार था, वह भी छूट गया। केवल जीविकार्थ पाठमात्र ब्राह्मण लोग पढ़ते रहे सो पाठ मात्र भी क्षत्रिय आदि को न पढ़ाया। क्योंकि जब अविद्वान् हुए गुरु बन गए तब छल, कपट, अधर्म भी उनमें बढ़ता चला गया। ब्राह्मणों ने विचारा कि अपनी जीविका का प्रबन्ध बांधना चाहिए सम्मति करके यही निश्चय कर क्षत्रिय आदि को उपदेश करने लगे कि हम ही तुम्हारे पूज्य देव हैं। बिना हमारी सेवा किए तुम को स्वर्ग वा मुक्ति न मिलेगी किन्तु जो तुम हमारी सेवा न करोगे तो घोर नरक में पड़ोगे।

जो २ पूर्ण विद्यावाले धार्मिकों का नाम ब्राह्मण और पूजनीय वेद और ऋषि मुनियों के शास्त्र में लिखा था उनको अपने मूर्ख, विषयी, कपटी, लम्पट, अधर्मियों पर घटा बैठे। भला वे आप्त विद्वानों के लक्षण उन मूर्खों में कब घट सकते हैं ?

परन्तु जब यजमान विद्याहीन हुए और आप कुछ पाठ पूजा पढ़ कर अभिमान में आके सब लोगों ने परस्पर सम्मति करके राजा आदि से कहा कि ब्राह्मण और साधु अदण्ड्य हैं, देखो ! 'ब्राह्मणो न हन्तव्यः', 'साधुः न हन्तव्यः' ऐसे २ वचन जो कि पोपों ने अपने पर घटा लिए। और भी झूठे झूठे वचन युक्त ग्रन्थ रचकर उनमें ऋषि मुनियों के नाम धर के उन्हीं के नाम से सुनाते रहे। उन प्रतिष्ठित ऋषि महर्षियों के नाम से अपने पर से

दण्ड व्यवस्था उठवा दी। पुनः यथेष्टाचार करने लगे। ऐसे कड़े नियम चलाये कि उन पोपों की आज्ञा के बिना सोना, उठना, बैठना, जाना, आना, खाना पीना आदि भी नहीं कर सकते थे।

जब ऐसी मूर्खता हुई तब पोपों की जैसी इच्छा हुई वैसा करने लगे। अर्थात् इस बिगाड़ के मूल महाभारत से पूर्व एक सहस्त्र वर्ष में प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि उस समय ऋषि मुनि भी थे तथापि कुछ २ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे। और विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम शूरवीरतादि शुभ गुण सब नष्ट होते चले गए। तत् पश्चात् जब विषयासक्त हुए तो मद्यमांस का सेवन गुप्त गुप्त करने लगे।

तत् पश्चात् उन्हीं में से एक वाममार्ग खड़ा किया। 'शिव उवाच' 'पार्वत्युवाच' 'भैरव उवाच' इत्यादि नाम लिख कर उनका तन्त्र नाम धरा। और जो वेद विरुद्ध महा अधर्म के काम हैं उन्हीं को श्रेष्ठ वाम मार्गियों ने माना। मद्य माँस, मीन अर्थात् मच्छी, मुद्रा, पूरी, कचौरी, बड़े, रोटी आदि चवण, योनिपात्राधार मुद्रा और पांचवां मैथुन अर्थात् पुरुष सब शिव और स्त्री सब पार्वती के समान मानकर - चाहे कोई पुरुष वा स्त्री हो, समागम करने में वे वाममार्गी दोष नहीं मानते।

मद्य का नाम धरा 'तीर्थ', मांस का नाम 'शुद्धि' और 'पुष्प' मच्छी का नाम 'तृतीया' 'जल तुम्बिका', मुद्रा का नाम चतुर्थी और मैथुन का नाम 'पंचमी'। इसलिए ऐसे २ नाम धरे हैं कि जिससे दूसरा न समझ सके। और कहते हैं कि जब भैरवीचक्र हो तब उसमें ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त का नाम द्विज हो जाता है और जब भैरवी चक्र से अलग हो तब सब अपने अपने वर्णस्थ हो जायं।

इसीलिए इन लोगों ने केवल वेद विरुद्ध मत खड़ा किया है। पश्चात् इन लोगों का मत बहुत चला। तब धूर्तता करके वेदों के नाम से भी वाममार्ग की थोड़ी - थोड़ी लीला चलाई।

जब इन पोपों का ऐसा अनाचार देखा और दूसरे मरे का तर्पण श्राद्धादि करने को देख कर एक महाभयंकर वेदादि शास्त्रों का निन्दक बौद्ध और जैनमत प्रचलित हुआ है। इसी का शाखा-रूप चारवाक और आभणक मत हुआ था।

बहुतों ने इनका मत स्वीकार किया परन्तु कितने ही जो पर्वत काशी, कन्नौज, पश्चिम, दक्षिण देश वाले थे जिन्होंने जैनों का मत स्वीकार नहीं किया था। वे जैनी वेद का अर्थ न जान कर बाहर की पोपलीला को भ्रान्ति से वेदपरक मानकर वेदों की भी निन्दा करने लगे। ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त अपने तीर्थं-करों की बड़ी २ मूर्तियां बना कर पूजा करने लगे अर्थात् पाषाणादि मूर्तिपूजा की जड़ जैनियों से प्रचलित हुई। परमेश्वर का मानना न्यून हुआ, पाषाणादि मूर्तिपूजा में लगे।

बाइस सौ वर्ष हुए कि एक शंकराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़ कर सोचने लगे कि अहह! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है। इनको किसी प्रकार हटाना चाहिए। निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से ये लोग हटेंगे। अतः उन्होंने जैनियों के साथ अनेक शास्त्रार्थ किए और उन्हें परास्त किया।

उसी समय से यज्ञोपवीत होने लगे और वेदों का पठन पाठन भी चला। दश वर्ष के भीतर सर्वत्र आर्यावर्त देश में घूमकर जैनियों का खण्डन और वेदों का मण्डन किया। शंकराचार्य के

समय शैत्रमत भी थोड़ा सा प्रचलित था उसका भी खण्डन किया। वाममार्ग का भी खण्डन किया।

यद्यपि शंकराचार्य के पूर्व वाममार्गियों के पश्चात् शैवादि सम्प्रदायस्थ मतवादी भी हुए थे, परन्तु उनका बहुत बल नहीं हुआ था। महाराजा विक्रमादित्य से लेके शैवों का बल बढ़ता गया। शैवों में पाशुपतादि बहुत सी शाखा हुई थी, जैसी वाममार्गियों में दश महाविद्यादि की शाखा हैं। लोगोंने शंकराचार्य को शिव का अवतार ठहराया। उनके अनुयायी संन्यासी भी शैवमत में प्रवृत्त हो गए और वाममार्गियों को भी मिलाते रहे। वाममार्गी, देवी जो शिव की पत्नी है, उसके उपासक और शैव महादेव के उपासक हुए। ये दोनों रुद्राक्ष और भस्म अद्यावधि धारण करते हैं परन्तु जितने वाममार्गी वेद विरोधी हैं वैसे शैव नहीं हैं।

इन वाममार्गियों और शैवों ने सम्मति करके भग लिंग का स्थापन किया, जिसको जलाधारी और लिंग कहते हैं, उसकी पूजा करने लगे।

जब राजा भोज के बाद जैनी अपने मन्दिरों में मूर्ति स्थापन करने लगे और दर्शन, स्पर्शन को आने जाने लगे तो राजा भोज के राज्य में व्यास जी के नाम से मार्कण्डेय और शिव पुराण किसी ने बना कर खड़ा किया था। पश्चात् पोपों ने यही सम्मति की कि जैनियों के सदृश अपने भी अवतार, मन्दिर, मूर्ति और कथा के पुस्तक बनावें। इन लोगों ने जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों के सदृश चौबीस अवतार, मन्दिर और मूर्तियां बनाईं। जैसे जैनियों के आदि और उत्तर पुराणादि हैं, वैसे अठारह पुराण बनाने लगे।

राजा भोज के डेढ़ सौ वर्ष के पश्चात् वैष्णव मत का आरम्भ हुआ। शैवों ने शिवपुराण, शाक्तों ने देवी भागवतादि, बैष्णवों ने विष्णु- पुराणादि बनाए। उनमें अपना नाम इसलिए नहीं धरा कि हमारे नाम से बनेंगे तो कोई प्रमाण न करेगा। इसलिए व्यासादि ऋषि मुनियों के नाम धर के पुराण बनाए। नाम भी इनका वास्तव में नवीन रखना चाहिए।

देवी भागवत में जैसे महादेव, विष्णु और ब्रह्मादि की क्षुद्रता और देवी की बड़ाई लिखी है उसी प्रकार शिवपुराण में देवी आदि की बहुत क्षुद्रता लिखी है।

वस्तुत: सत्यार्थ को न जान कर शैव, शाक्त, वैष्णवादि सम्प्रदायी लोग एक दूसरे के नाम की निन्दा करते हैं। मन्दमति तनिक भी अपनी बुद्धि को फैला कर नहीं विचारते है कि ये सब विष्णु, रुद्र, शिव आदि नाम एक अद्वितीय, सर्वनियन्ता, सर्वान्तिर्यामी जगदीश्वर के अनेक गुण कर्म स्वभावयुक्त होने से उसी के वाचक हैं।

देखिये चक्रांकित वैष्णवों की अद्भुत माया। जैसे वाममार्गी पांच मकार मानते है वैसे चक्रांकित पांच संस्कार मानते हैं। अर्थात् ताप-शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिन्हों को अग्नि में तपा के भुजा के मूल में दाग देना; पुण्ड्रम् — त्रिशूल के सदृश ललाट में चित्र निकालना; नाम - नारायण दास, विष्णुदास अर्थात् दास शब्दान्त नाम रखना; माला कमलगट्टे की रखना और पांचवां मन्त्र -जैसे ओं नमो नारायण! श्रीमते नारायणाय नमः इत्यादि मन्त्र, धनाढ्य और माननीयों के लिए बना रखे हैं।

देखो! चक्रांकित लोग अपने को बड़े वैष्णव मानते हैं।

परन्तु अपनी परम्परा और कुकर्म की ओर ध्यान नहीं देते। जैसे चक्रांकित आदि वेद विरोधी हैं वैसे शंकराचार्य के मत के नहीं।

मूर्तिपूजा से हानि

प्रश्न - मूर्तिपूजा कहां से चली ?

उत्तर - जैनियों से।

प्रश्न - जैनियों ने कहां से चलाई ?

उत्तर - अपनी मूर्खता से।

प्रश्न - जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति देख के अपने जीव का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है।

उत्तर - जीव चेतन और मूर्ति जड़ है। क्या मूर्ति के सदृश जीव भी जड़ हो जायगा? यह मूर्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है।

प्रश्न - शाक्तादि ने मूर्तियों में जैनियों का अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैनियों की मूर्तियों के सदृश वैष्णवादि की मूर्तियां नहीं हैं।

उत्तर — हां, यह ठीक है। जो जैनियों के तुल्य बनाते तो जैन मत में मिल जाते। इस लिए जैनों की मूर्तियों से विरुद्ध बनाई। क्योंकि जैनों से विरोध करना उनका काम और इनसे विरोध करना मुख्य उनका काम था। जैसे जैनों ने मूर्तियां नंगी ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्य के समान बनाई हैं, उनसे विरुद्ध वैष्णवादि यथेष्ट शृंगारित स्त्री के सहित रंग राग भोग विषयासक्ति सहितकार खड़ी और बैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शंख घण्टा घरियाल आदि बाजे नहीं बजाते। ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं। तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि सम्प्रदायी पोपों के चेले जैनियों के जाल से बच के इनकी लीला में आ फंसे

और बहुत से व्यासादि महर्षियों के नाम से मनमानी असम्भव गाथ युक्त ग्रन्थ बनाए। उनका नाम पुराण रख कर कथा भी सुनाने लगे।

जब आंख के अन्धे और गांठ के पूरे लोगों ने पोप जी की लीला सुनी तब तो सच ही मान ली।

प्रश्न — परमेश्वर निराकार है। वह ध्यान में नहीं आ सकता, इसलिए अवश्य मूर्ति होनी चाहिए।

उत्तर — जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती। जो मूर्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाए पृथिवी जल, अग्नि, वायु और वनस्पति अनेक पदार्थ जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचना की है। ऐसी रचना युक्त पृथिवी पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियां कि जिन पहाड़ आदि से मनुष्यकृत मूर्तियां बनती हैं उनको देखकर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता ? जो तुम कहते हो कि मूर्ति देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है। जब यह मूर्ति सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहां मुझे कोई नहीं देखता। इसलिए वह अनर्थ करे बिना नहीं चूकता इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्तिपूजा करने से सिद्ध होते हैं।

अब देखिए ! जो पाषाणादि मूर्तियो को न मानकर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वत्र सर्वदा परमेश्वर को सबके बुरे भले कर्मों का द्रष्टा जानकर एक क्षणमात्र भी परमात्मा से अपने को

पृथक् न जान के, कुकर्म करना तो कहां रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ बुरा काम करूंगा तो इस अन्तर्यामी के न्याय से बिना दण्ड पाये कदापि न बचूंगा। नाम स्मरणमात्र से कुछ नहीं होता जैसा कि मिश्री २ कहने से मुंह मीठा और नीम २ कहने से कड़वा नहीं होता किन्तु जीभ से चखने से ही मीठा वा कड़वापन जाना जाता है।

प्रश्न— क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है। जो पुराणों में नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है ?

उत्तर— नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नामस्मरण करते हो वह रीति वेद विरुद्ध होने से झूठी है।

प्रश्न— अब आप हमको वेदोक्त नामस्मरण की रीति बतलाइए।

उत्तर— नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिए। जैसे — "न्यायकारी" ईश्वर का एक नाम है। इस नाम से जो इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सबका यथावत् न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

प्रश्न— जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्ति में भी है। पुनः चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं ?

उत्तर— जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना, यह ऐसी बात है कि जैसे चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक

छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना। देखो! यह कितना बड़ा अपमान है! वैसा तुम परमेश्वर का अपमान करते हो।

प्रश्न— मूर्तिपूजा में पुण्य नहीं तो पाप तो नहीं है?

उत्तर— कर्म दो ही प्रकार के होते हैं — विहित — जो कर्त्तव्यता से वेद में सत्यभाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरे निषिद्ध— जो अकर्त्तव्यता से मिथ्या-भाषणादि वेद में निषिद्ध हैं। जैसे विहित का अनुष्ठान करना वह धर्म, उसका न करना अधर्म है। वैसे ही निषिद्ध का करना अधर्म और न करना धर्म है। जब वेदों में निषिद्ध मूर्तिपूजादि कर्मों को तुम करते हो तो पापी क्यों नहीं?

प्रश्न— साकार में मन स्थिर होता और निराकार में स्थिर होना कठिन है इसलिएं मूर्तिपूजा रहनी चाहिए।

उत्तर— साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक २ अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण कर्म स्वभाव का विचार करता २ आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है। जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता, क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है। परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगावें। क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है इसलिए मूर्तिपूजन करना अधर्म है।

जो वेद से विरुद्ध चलते हैं उनमें कही हुई मूर्तिपूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट हो जाता है।

इसलिए ज्ञानियों की सेवा संग से ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी ला सकता है ? नहीं ! नहीं !!

मूर्तिपूजा के दोष

1. करोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है।
2. स्त्री पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं।
3. उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मानके पुरुषार्थ रहित होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गमाता है।
4. नाना प्रकार की विरुद्ध स्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्धमत में चल कर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं।
5. उसी के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय होकर राज्य स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विध दुःख पाते हैं।
6. जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान करता है वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्तियां धरते हैं, उन दुष्टबुद्धि वालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे ?
7. भ्रान्त होकर मन्दिर २ देशदेशान्तर में घूमते २ दुःख पाते,

धर्म, संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोट आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं।

8. दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं। वे उस धन को वेश्या, पर—स्त्रीगमन, मद्य मांसाहार, लड़ाई बखेड़ों में व्यय करते हैं जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है।
9. माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं।
10. उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है, तब हा हा करके रोते रहते हैं।
11. पुजारी परस्त्रियों के संग और पुजारिन परपुरुषों के संग से दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं।
12. स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्धभाव होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।
13. जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़बुद्धि हो जाता हैं, क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तः करण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है।
14. परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिए बनाए हैं। उनको पुजारी जी तोड़ताड़ कर, न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़ कर वायु जल की शुद्धि करती, पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल सड़कर उल्टा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने

के लिए पुष्पादि सुगन्धयुक्त पदार्थ रचे है ?

15. पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प चन्दन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड़ के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का, सहस्त्रों जीव उसमें पड़ते, उसी में मरते और सड़ते हैं।

ऐसे २ अनेक मूर्तिपूजा के करने में दोष आते हैं। इसलिए पाषाणादि मूर्तिपूजा सज्जन लोगों को सर्वथा त्यक्तव्य- है। जिन्होंने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे।

अत: किसी प्रकार की मूर्तिपूजा न करना किन्तु जो सच्ची पंचायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा और मूर्तिपूजा है, सुनो—

प्रथम—माता मूर्तिमती पूजनीय देवता अर्थात् सन्तानों को तन मन धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना।

दूसरा — पिता सत्कर्त्तव्य देव। उसी की भी माता के समान सेवा करनी।

तीसरा — आचार्य जो विद्या का देने वाला है उसकी तन मन धन से सेवा करनी।

चौथा — अतिथि जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सबकी उन्नति चाहने वाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सबको सुखी करता है उसकी सेवा करें।

पांचवां — स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिए स्वपत्नी

पूजनीय है।

ये पांच मूर्तिमान् देव जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति पालन सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढ़ियां हैं। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं वे अतीव पामर नरकगामीं हैं।

प्रश्न - माता - पिता आदि की सेवा करें और मूर्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं?

उत्तर - पाषाणादि मूर्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और माता आदि मूर्तिमानों की सेवा करने में ही कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पाषणादि में सिर मारना स्वीकार किया।

इसी प्रकार काल भैरव, लाट भैरव, कलकत्ते की काली, कामाक्षा, जगन्नाथ, गया, काशी, रामेश्वर, सोमनाथ, द्वारिका, ज्वालामुखी, हरिद्वार, विन्ध्येश्वरी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्यादि तीर्थों एवं सब देवी देवताओं के चमत्कार तथा उनकी लीलाएं सभी कपोल- कल्पित और पोपलीलाओं से भरीं हुई हैं। वस्तुत: न इनमें कोई चमत्कार है न मोक्ष देने की शक्ति।

प्रश्न - यह मूर्तिपूजा और तीर्थ सनातन से चले आते हैं। झूठे क्यों कर हो सकते हैं?

उत्तर - जो यह सदा से होता तो वेद ब्राह्मणादि ऋषि मुनि-कृत पुस्तकों में इनका नाम क्यों नहीं? यह मूर्तिपूजा अढ़ाई तीन सहस्र वर्ष के इधर २ वाममार्गी और जैनियों से चली है। प्रथम आर्यावर्त में नहीं थी। ये तीर्थ भी नहीं थे। जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करना चाहें वे पण्डों की पुरानी से पुरानी बही और

तांबे के पत्र आदि लेख देखें तो निश्चय हो जाएगा कि ये सब तीर्थ पांच सौ अथवा एक सहस्र से इधर ही बने हैं। सहस्र वर्ष से उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता, इससे आधुनिक हैं।

प्रश्न — तो कोई तीर्थ, नामस्मरण सत्य है वा नहीं !

उत्तर — है, वेदादि सत्यशास्त्रों का पढ़ना- पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट सत्यभाषण, सत्य का मानना, सत्य का करना, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतिथि माता पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान विज्ञान आदि शुभ गुण कर्म दु:खों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं और जो जलस्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते। क्योंकि —

जनाः यैः तरन्ति तानि तीर्थानि ॥

मनुष्य जिन करके दु:खों से तरें उन का नाम तीर्थ है। जल स्थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबा कर मारने वाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे समुद्र आदि को तरते हैं।

नामस्मरण इसको कहते हैं कि —

यस्य नाम महद् यशः ॥ यजु. 32/3

परमेश्वर का नाम बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामों का करना है। जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान आदि नाम परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव से हैं। जैसे ब्रह्म सबसे बड़ा परमेश्वर ईश्वरों का ईश्वर, सामर्थ्ययुक्त, न्यायकारी कभी अन्याय नहीं करता, दयालु सब पर कृपादृष्टि रखता, सर्वशक्तिमान् अपने सामर्थ्य ही से सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति,

प्रलय करता, सहाय किसी की नहीं लेता, ब्रह्मा विविध जगत् के पदार्थों का बनाने हारा, विष्णु सबमें व्यापक होकर रक्षा करता आदि नामों के अर्थों को अपने में धारण करे अर्थात् बड़े कामों से बड़ा हो, समर्थों में समर्थ हो, सामर्थ्यों को बढ़ाता जाय, अधर्म कभी न करे, सब पर दया रखे, शिल्पविद्या से नाना प्रकार के पदार्थों को बनावे, सब संसार में अपनी आत्मा के तुल्य सुख दुःख समझे, सबकी रक्षा करे, विद्वानों में विद्वान् होवे, इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नामस्मरण है।

प्रश्न — अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यास जी हैं। व्यासवचन का प्रमाण अवश्य करना चाहिए।

उत्तर — जो अठारह पुराणों के कर्ता व्यास जी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते। क्योंकि शारीरिकसूत्र, योगशास्त्र के भाष्यादि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यास जी बड़े विद्वान् सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते। इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाए हैं, उनमें व्यास जी के गुणों का लेश भी नहीं था और वेद-शास्त्र विरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदृश विद्वानों का काम नहीं किन्तु यह काम विरोधी, स्वार्थी, अविद्वान् लोगों का है। इतिहास और पुराण शिवपुराण आदि का नाम नहीं किन्तु —

ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों ही के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पांच नाम हैं। (इतिहास) जैसे जनक और याज्ञवल्क्य संवाद। (पुराण) जगदुत्पत्ति

का वर्णन। (कल्प) वेद शब्दों के सामर्थ्य का वर्णन, अर्थनिरूपण करना। (गाथा) किसी का दृष्टान्त दार्ष्टान्ति कथा प्रसंग कहना। (नाराशंकी) मनुष्यों के प्रशंसनीय वा अप्रशंसनीय कर्मों का कथन करना।

जो व्यास कृत ग्रन्थ हैं उनका सुनना-सुनाना, व्यास जी के जन्म के पश्चात् ही हो सकता है पूर्व नहीं। जब व्यास जी ने वेद पढ़े और पढ़ा कर वेदार्थ फैलाया इसीलिए उनका नाम "वेदव्यास" हुआ। क्योंकि व्यास कहते हैं वार पार की मध्य रेखा को अर्थात् ऋग्वेद के आरम्भ से लेकर अथर्ववेद के पार पर्यन्त चारों वेद पढ़े थे। शुकदेव और जैमिनि आदि शिष्यों को पढ़ाए भी थे। नहीं तो उनका जन्म का नाम "कृष्णद्वैपायन" था।

प्रश्न — पुराणों में सब बातें झूठी हैं वा कोई सच्ची भी है ?

उत्तर — बहुत सी बातें झूठी हैं और कोई घुणाक्षरन्याय से सच्ची भी हैं। जो सच्ची हैं वह वेदादि शास्त्रों की और जो झूठी हैं वे इन पोपों के पुराणरूप घर की हैं।

देखो ! श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम, पर स्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्री कृष्ण जी में लगाए हैं। इसको पढ़ पढ़ा, सुन सुना के अन्य मत वाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओ की झूठी निन्दा क्योकर होती ?

प्रश्न — ग्रहों का फल होता है वा नहीं ?

उत्तर — जैसा पोपलीला का है वैसा नहीं। किन्तु जैसा सूर्य चन्द्रमा का किरण द्वारा उष्णता शीतता अथवा ऋतुवत् कालचक्र के सम्बन्ध मात्र से अपनी प्रकृति के अनुकूल सुख दुःख के निमित्त होते हैं परन्तु जो पोपलीला वाले कहते हैं — "सुनो महाराज सेठ जी ! यजमानो ! तुम्हारे आज आठवां चन्द्र सूर्यादि क्रूर घर में आए हैं। अढ़ाई वर्ष का शनैश्चर पग में आया है। तुमको बड़ा विघ्न होगा। घर द्वार छुड़ा कर परदेश में घुमावेगा। परन्तु जो तुम ग्रहों का दान, जप, पाठ, पूजा कराओगे तो दुःख से बचोगे।" इनसे कहना चाहिए कि सुनो पोप जी ! तुम्हारा और ग्रहों का क्या सम्बन्ध है ? ग्रह क्या वस्तु है ?

तुमको दान देने से ग्रह प्रसन्न और न देने से अप्रसन्न होते हों तो हमको दिखाओ। जिसका आठवां सूर्य, चन्द्र और दूसरे को तीसरा हो दोनों को ज्येष्ठ महीने में विना जूते पहने तपी हुई भूमि पर चलाओ। जिस पर प्रसन्न हैं उनके पग, शरीर न जलने और जिस पर क्रोधित हैं उनके जल जाने चाहिए। तथा पौष मास में दोनों को नंगे कर पौर्णमासी की रात्रि भर मैदान में रखें। एक को शीत लगे दूसरे को नहीं तो जानो कि ग्रह क्रूर और सौम्यदृष्टि वाले होते हैं। और क्या तुम्हारे ग्रह सम्बन्धी हैं ? और तुम्हारी डाक वा तार उनके पास आता जाता है ? अथवा तुम उनके वा वे तुम्हारे पास आते जाते हैं ?

सच तो यह है कि सूर्यादि लोक जड़ हैं। वे न किसी को दुःख और न सुख देने की चेष्टा कर सकते हैं। किन्तु जितने तुम ग्रह-दानोपजीवी हो वे सब तुम ग्रहों की मूर्तियां हो। क्योंकि ग्रह शब्द का अर्थ भी तुम में ही घटित होता है।

ये गृहणन्ति ते ग्रहा:।

जो ग्रहण करते हैं उनको नाम ग्रह है। जब तक तुम्हारे चरण राजा रईस सेठ साहूकार और दरिद्रों के पास नहीं पहुंचते, तब तक किसी को नवग्रह का स्मरण भी नहीं होता। जब तुम साक्षात् सूर्य शनैश्चरादि मूर्तिमान क्रूर रूप धर उन पर जा चढ़ते हो तब बिना ग्रहण किए उनको कभी नहीं छोड़ते। और जो कोई तुम्हारे ग्रास में न आवे उसकी निन्दा नास्तिकादि शब्दों से करते फिरते हो।

प्रश्न - क्या गरुड़ पुराण भी झूठ है?

उत्तर - हां, असत्य है।

प्रश्न - फिर मरे हुए जीव की क्या गति होती है?

उत्तर - जैसे उसके कर्म हैं।

प्रश्न - जब यमलोक और यम नहीं है तो मरकर जीव कहां जाता और इनका न्याय कौन करता है?

उत्तर - तुम्हारे गरुड़ पुराण का कहा हुआ तो अप्रमाण है परन्तु जो वेदोक्त है—

'यम' नाम वायु का है। शरीर छोड़ वायु के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं। और जो सत्यकर्ता पक्षपात रहित परमात्मा "धर्मराज" है वही सबका न्यायकर्ता है।

प्रश्न - तुम्हारे कहने से गोदानादि दान किसी को न देना और न कुछ दान पुण्य करना ऐसा सिद्ध होता है।

उत्तर - यह तुम्हारा कथन सर्वथा व्यर्थ है। क्योंकि सुपात्रों को, परोपकारियों को परोपकारार्थ सोना, चांदी, हीरा, मोती, माणिक, अन्न, जल, वस्त्रादि दान अवश्य करना उचित है। किन्तु कुपात्रों को कभी न देना चाहिए।

प्रश्न — कुपात्र और सुपात्र का लक्षण क्या है ?

उत्तर — जो छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त, परहानि करने वाले, लंपटी, मिथ्यावादी, अविद्वान् कुसंगी, आलसी, जो कोई दाता हो उस के पास बारम्बार मांगना, ना किए पश्चात् भी हठता से मांगते जाना, सन्तोष न होना, ऊपर से साधु वेश बना लोगों को बहका कर ठगना, अपने पास पदार्थ हो तो भी कहना मेरे पास कुछ भी नहीं है, सत्यमार्ग का विरोध और झूठ मार्ग में अपने प्रयोजनार्थ चलना आदि कुपात्रों के लक्षण हैं।

जो ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादि विद्या के पढ़ने पढ़ानेहारे, सुशील, सत्यवादी, परोपकारप्रिय, पुरुषार्थी, उदार, विद्या धर्म की उन्नति करनेहारे, उत्साही, योगी, ज्ञानी, न्याययुक्त, पक्षपात रहित, धर्मात्मा, शान्त, अपने आत्मा के तुल्य अन्य का भी सुख दुःख समझने वाले, जो कोई प्रीति से जितना देवे उतने से प्रसन्न, रागद्वेष से रहित, गम्भीराशय इत्यादि शुभलक्षणयुक्त सुपात्र होते हैं।

प्रश्न — जो गरुड़पुराण आदि ग्रन्थ हैं वेदार्थ वा वेद की पुष्टि करने वाले हैं या नहीं ?

उत्तर — नहीं, किन्तु वेद के विरोधी और उल्टे चलते हैं तथा तन्त्र भी वैसे ही हैं।

शैव, वैष्णव, वाममार्गी आदि मतवादी सभी एक दूसरे को बुरा कहने के कारण सारे ही बुरे हैं। रामानन्दी, माधव, गौड़बंगाली, रुखड़, सुखड़, गोदड़िये, सुतरेसाई, अकाली, कनफटे, जोगी, औघड़, गुसाईं, दादूपंथी, कबीरपंथी, रामस्नेही,

वल्लभसम्प्रदाय, स्वामीनारायणमत, गोकुलिए गुसाईं आदि सबके सब एक से हैं।

ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज

प्रश्न — ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज सबसे अच्छा है क्योंकि इसके नियम बहुत अच्छे हैं।

उत्तर — नियम सर्वांश में अच्छे नहीं क्योंकि वेद विद्याहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्यों-कर हो सकती है? जो कुछ ब्राह्म समाज और प्रार्थनासमाज़ियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाये और कुछ 2 पाषाणादि मूर्तिपूजा को हटाया, अन्य जाल ग्रन्थों के फन्दे से भी कुछ बचाए, इत्यादि अच्छी बातें हैं।

दोष — 1. परन्तु इन लोगों में स्वदेशभक्ति बहुत न्यून है! ईसाइयों के आचारण बहुत से ले लिए हैं। खानपान विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं।

2. अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही उसके स्थान में पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते, प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्यावर्तीय लोग सदा से मूर्ख चले आए हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई।

3. वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही, निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तक में साधुओं की संख्या में 'ईसा', 'मूसा', 'मुहम्मद', 'नानक' और 'चैतन्य' लिखे हैं। किसी ऋषि महर्षि का नाम भी नहीं लिखा। इससे

जाना जाता है इन लोगों में जिनका नाम लिखा है, उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं।

भला जब आर्यावर्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया, अब भी खाते पीते हैं, अपने माता, पिता, पितामह आदि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृतविद्या से रहित अपने को विद्वान प्रकाशित करना, इंगलिश भाषा पढ़ के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना, मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है?

प्रश्न — देखो, यूरोपियन लोग मुण्डे जूते, कोट पतलून पहरते, होटल में सबके हाथ का खाते हैं इसीलिये अपनी बढ़ती करते जाते हैं।

उत्तर — यह तुम्हारी भूल है, क्योंकि मुसलमान अन्त्यज लोग सबके हाथ का खाते हैं, पुन: उनकी उन्नति क्यों नहीं होती?

जो यूरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, वे विद्वान् होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते, जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर विचार और सभा से निश्चित करके करते हैं, स्वजाति की उन्नति के लिए तन, मन, धन व्यय करते हैं, आलस्य को छोड़ कर उद्योग किया करते हैं।

देखो! अपने देश के बने हुए जूते को कार्यालय (आफिस) और कचहरी में जाने देते हैं इस देशी जूते को नहीं। इतने में ही समझ लेओ कि अपने देश के बने जूतों का भी कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं, उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते।

देखो ! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आए यूरोपियनों को हुए और आज तक वे लोग मोटे कपड़े आदि पहिरते हैं जैसा कि स्वदेश में पहिरते थे। परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा। तुममें से बहुत से लोगों ने उनकी नकल कर ली। इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं। अनुकरण करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं। जो जिस काम पर रहता है उसको यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देशवालों को बराबर सहाय देते हैं, इत्यादि गुणों और अच्छे अच्छे कर्मों से उनकी उन्नति है।

इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो "आर्य समाज" के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आप को अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिल कर प्रीति से करें। इसलिए जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत् सहायता देवें तो बहुत अच्छी बात है। क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है, एक का नहीं।

देखो ! तुम्हारे सामने पाखण्ड मत बढ़ते जाते हैं, ईसाई, मुसलमान तक होते जाते हैं। तनिक भी तुमसे अपने घर की रक्षा और दूसरों को मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब जब तुम करना चाहो।

वस्तुत: मनुष्य का नेत्र विद्या ही है। बिना विद्या शिक्षा के

ज्ञान नहीं होता। जो बाल्यावस्था से उत्तम शिक्षा पाते हैं वे ही मनुष्य और विद्वान् होते हैं। जिनको कुसंग है वे दुष्ट पापी महामूर्ख होकर बड़े दुःख पाते हैं। जो पुरुष विद्वान, ज्ञानी, धार्मिक सत्पुरुषों का संगी, योगी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय, सुशील होता है वही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त होकर इस जन्म और परजन्म में सदा आनन्द में रहता है।

इति एकादशः समुल्लासः सम्पूर्णः

— 0 —

शंकराचार्य ने अपने वेदान्त द्वारा जिस भ्रम की सृष्टि की, उसने बौद्धों के पैर भले ही उखाड़ दिए हों किन्तु सत्य वैदिक धर्म के स्वरुप को विकृत रुप में संसार के समक्ष प्रस्तुत कर सत्य को भुलाने का प्रयास किया।

— 0 —

भारत जैसे उन्नत, सर्वविध सम्पन्न राष्ट्र के पतन का सबसे बड़ा कारण है-मूर्तिपूजा। अज्ञान, अन्धकार, अन्धविश्वास, गुरुडम की यह पहली सीढ़ी मनुष्य को लक्ष्य से भटकाने का प्रबल साधन है।

— 0 —

पाखण्डी, ढोंगी व्यक्तियों का बोध ‘ पोप ’ शब्द से होता है। भारत के हर ग्राम-मोहल्ले में ‘ पोप ’ आपको आसानी से मिल जाएंगे। धर्म के नाम पर धोखा, छल और प्रत्येक पाप इनका अस्त्र है।

— 0 —

ऋषियों मुनियों का देश भारत उत्कर्ष के लिए ‘ वेद ’ का प्रकाश चाहता है। इसके बिना और कुछ भी हो, रामराज्य की स्थापना नहीं हो सकती।

अनुभूमिका - 2

जब आर्यावर्तस्थ मनुष्यों में सत्यासत्य का यथावत् निर्णय करने वाली वेद विद्या छूटकर अविद्या फैल के मतमतान्तर खड़े हुए, यही जैन आदि के विद्या विरुद्ध मत प्रचार का निमित्त हुआ।

क्योंकि बाल्मीकीय और महाभारतादि में जैनियों का नाम मात्र भी नहीं लिखा और जैनियों के ग्रन्थों में बाल्मीकीय और भारत में कथित "रामकृष्णादि" की गाथा बड़े विस्तार पूर्वक लिखी है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह मत इनके पीछे चला। जैसा अपने मत को बहुत प्राचीन जैनी लोग लिखते हैं वैसा होता तो बाल्मीकीय आदि ग्रन्थों में उनकी कथा अवश्य होती। इसलिए जैन मत उनके पीछे चला है।

इस समुल्लास में जो जो जैनियों के मत विषय में लिखा गया है, सो २ उनके ग्रन्थों के पते पूर्वक लिखा है। इसमें जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिए। क्योंकि जो २ हमने इनके मत विषय में लिखा है वह केवल सत्यासत्य के निर्णयार्थ है न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ।

इस लेख को जैनी बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे तब सबको सत्यासत्य के निर्णय में विचार और बोध भी होगा। जब विद्वान् लोगों में सत्यासत्य का निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महा अन्धकार में पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है। इसलिए सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारी मनुष्य जाति का काम है।

यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो और यह बौद्ध जैन मत का विषय बिना इनके अन्य मत वालों

को अपूर्व लाभ और बोध करने वाला होगा। क्योंकि ये लोग अपने पुस्तकों को किसी अन्य मत वाले को देखने पढ़ने वा लिखने को भी नहीं देते।

भला यह किन विद्वानों की बात है कि अपने मत के पुस्तक आप ही देखना और दूसरों को न दिखलाना। इसी से विदित होता है कि इन ग्रन्थों को बनाने वाले को प्रथम ही शंका थी कि इन ग्रन्थों में असम्भव बातें हैं। जो दूसरे मत वाले देखेंगे तो खण्डन करेंगे और हमारे मत वाले दूसरे के ग्रन्थ देखेंगे तो इस मत में श्रद्धा न रहेगी।

अस्तु, जो हो परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते किन्तु दूसरे के दोष देखने में अत्युद्युक्त रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं। क्योंकि प्रथम अपने दोष देख निकाल के पश्चात् दूसरों के दोषों में दृष्टि देके निकालें। अब इन बौद्ध जैनियों के मत का विषय सब सज्जनों के सम्मुख धरता हूं। जैसा है वैसा विचारें।

किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्येषु

संसार में नास्तिकता का प्रारम्भ कहां से हुआ ? इस विषय पर पर्याप्त खोज की आवश्यकता है। किन्तु यह तो निर्णीत सत्य है कि इसकी आधार शिला "खाओ पियो और मौज उड़ाओ" पर अवलम्बित है। चारवाक मत इसी विचार धारा का पोषक है।

बौद्ध और जैन मत को सत्य और शांति का प्रतीक माना जाता है परन्तु यह वस्तुतः महा-अंधकार के सर्जक हैं।

अथ द्वादशः समुल्लासः

नास्तिक मतान्तर्गत

चारवाक-बौद्ध-जैन मत समीक्षा

कोई एक बृहस्पति नामा पुरुष हुआ था जो वेद, ईश्वर यज्ञादि उत्तम कर्मों को भी नहीं मानता था। उसका मत था—

कोई मनुष्यादि प्राणी मृत्यु के अगोचर नहीं है अर्थात् सबको मरना है। इसलिए जब तक शरीर में जीव रहे तब तक सुख से रहे। मरने के पश्चात् शरीर भस्म हो जाता है। वह पुन: संसार में न आवेगा। इसलिए जैसे हो सके वैसे आनन्द में रहो, लोक में नीति से चलो, ऐश्वर्य को बढ़ाओ और उससे इच्छित भोग करो। यही लोक समझो, परलोक कुछ नहीं।

देखो ! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतों के परिणाम से यह शरीर बना है। जैसे मादक द्रव्य खाने पीने से मद (नशा) उत्पन्न होता है, इसी प्रकार जीव शरीर के साथ उत्पन्न होकर शरीर के नाश के साथ आप भी नष्ट हो जाता है। फिर किसको पाप पुण्य का फल होगा ?

प्रश्न - इस शरीर में चारों भूतों के संयोग से जीवात्मा उत्पन्न होकर उन्हीं के वियोग के साथ नष्ट हो जाता है। क्योंकि मरे पीछे कोई भी जीव प्रत्यक्ष नहीं होता। हम एक प्रत्यक्ष को ही मानते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष के बिना अनुमानादि होते नहीं। इसलिए मुख्य प्रत्यक्ष के सामने अनुमानादि गौण होने से उनका ग्रहण नहीं करते।

उत्तर - ये पृथिव्यादि भूत जड़ हैं, उन से चेतन की उत्पत्ति

कभी नहीं हो सकती। जैसे अब माता पिता के संयोग से देह की उत्पत्ति होती है, वैसे ही आदि सृष्टि में मनुष्यादि शरीरों की आकृति परमेश्वर कर्ता के बिना कभी नहीं हो सकती। मद के समान चेतन की उत्पत्ति और विनाश नहीं होता। क्योंकि मद चेतन को होता है जड़ को नहीं होता। इसी प्रकार अदृश्य होने से जीव का भी अभाव न मानना चाहिए। जब जीवात्मा सदेह होता है तभी उसकी प्रकटता होती है। जब शरीर को छोड़ देता है तब यह शरीर जो मृत्यु को प्राप्त हुआ है वह जैसा चेतन युक्त पूर्व था वैसा नहीं हो सकता।

जब जीव शरीर से पृथक् हो जाता है तब शरीर में ज्ञान कुछ भी नहीं रहता। जो देह से पृथक् आत्मा न हो तो जिसके संयोग से चेतनता और वियोग से जड़ता होती है वह देह से पृथक् है। जैसे आँख सबको देखती है परन्तु अपने को नहीं उसी प्रकार प्रत्यक्ष का करने वाला अपने को ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं कर सकता जैसे अपनी आँख से सब घट पटादि पदार्थ देखता है वैसे आंख को अपने ज्ञान से देखता है। जो द्रष्टा है वह द्रष्टा ही रहता है दृष्य कभी नहीं होता।

चारवाक - अग्निहोत्र, तीन वेद, तीन दण्ड और भस्म का लगाना बुद्धि और पुरुषार्थ रहित पुरुषों ने जीविका बना ली है। किन्तु कांटे लगने आदि से उत्पन्न हुए दु:ख का नाम नरक, लोकसिद्ध राजा परमेश्वर और देह का नाश होना मोक्ष, अन्य कुछ नहीं।

उत्तर - विषयरूपी सुख मात्र को पुरुषार्थ का फल मानकर विषय दु:ख निवारणमात्र में कृतकृत्यता और स्वर्ग मानना मूर्खता है। अग्निहोत्रादि यज्ञों से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि द्वारा

आरोग्यता का होना, उससे धर्म, अर्थ, काम और [illegible] होती है । उसको न जानकर वेद, ईश्वर और [illegible] निन्दा करना धूर्तों का काम है । जो त्रिदण्ड और भस्म धारण [illegible] खण्डन है सो ठीक है । यदि [illegible] नरक हो तो उससे अधिक महारोगादि नरक क्यों [illegible] राजा को ऐश्वर्यवान् और प्रजापालन में समर्थ होने से श्रेष्ठ माने तो ठीक है । परन्तु जो अन्यायकारी पापी राजा हो उसको भी परमेश्वरवत् मानते हो तो तुम्हारे जैसा कोई भी मूर्ख नहीं । शरीर का विच्छेद होना मात्र मोक्ष है तो गधे, कुत्ते आदि और तुम में क्या भेद रहा ? किन्तु आकृति मात्र हीं भिन्न रही ।

चारवाक— न कोई स्वर्ग, न कोई नरक और न कोई परलोक में जाने वाला आत्मा है और न वर्णाश्रम की क्रिया फल-दायक है । जो यज्ञ में पशु को मारकर होम करने से वह स्वर्ग में जाता हो तो यजमान अपने पिता को मार होम करके स्वर्ग को क्यों नहीं भेजता ?

जो मरे हुए जीवों का श्राद्ध और तर्पण तृप्तिकारक होता है तो परदेश में जाने वाले मार्ग में निर्वाहार्थ अन्न वस्त्र और धनादि को क्यों ले जाते हैं ? क्योंकि जैसे मृतक के नाम से अर्पण किया गया पदार्थ स्वर्ग में पहुंचता है तो परदेश में जाने वालों के लिए उनके सम्बन्धी भी घर में उनके नाम से अर्पण करके देशान्तर में पहुचा देवें । जो यह नहीं पहुंचता तो स्वर्ग में वह क्यों कर पहुच सकता है ?

जब तक जीवें तब तक सुख से जीवें जो घर में पदार्थ न हो तो ऋण लेकर आनन्द करे । ऋण देना नहीं पड़ेगा । क्योंकि जिस शरीर में जीव ने खाया पिया है उन दोनों का पुनरागमन न

होगा। फिर किससे कौन मांगेगा और कौन देवेगा ?

वेद के बनाने हारे भांड, धूर्त और निशाचर अर्थात् राक्षस ये तीन हैं और जो मांस का खाना लिखा है वह वेद भाग राक्षस का बनाया है ।

उत्तर – स्वर्ग सुख भोग और नरक दुख: भोग का नाम है। जो जीवात्मा न होता तो सुख-दुःख का भोक्ता कौन हो सके ? जैसे इस समय सुख-दुःख का भोक्ता जीव है वैसे परजन्म में भी होता है, क्या सत्य भाषण और परोपकारादि क्रिया भी वर्णाश्रमियों की निष्फल होगी ? कभी नहीं ।

पशु मार के होम करना वेदादि सत्यशास्त्रों में कहीं नहीं लिखा । मृतकों का श्राद्ध तर्पण करना कपोलकल्पित है । क्योंकि यह वेदादि सत्यशास्त्रों के विरुद्ध होने से भागवतादि पुराणमत वालों का मत है। इसलिए इस बात का खण्डन अखण्डनीय है ।

जो वस्तु है उसका अभाव कभी नहीं होता। विद्यमान जीव का अभाव नहीं हो सकता। देह भस्म हो जाता हैं जीव नहीं। जीव तो दूसरे शरीर में जाता है । इसलिए जो कोई ऋणादि विराने पदार्थों से इस लोक में भोग कर नहीं देते हैं वे निश्चय पापी होकर दूसरे जन्म में दुःख रुपी नरक भोगते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ।

यदि चारवाक आदि ने वेदादि सत्य शास्त्र देखे सुने या पढ़े होते तो वेदों की निन्दा कभी न करते कि वेद भांड, धूर्त और निशाचरवत् पुरुषों ने बनाए हैं, ऐसा वचन कभी न निकालते हां भांड, धूर्त निशाचरवत् महीधरादि टीकाकार हुए हैं, उनकी धूर्तता है वेदों की नहीं ।

परन्तु शोक है चारवाक, आभणक, बौद्ध और जैनियों पर कि इन्होंने मूल चार वेदों की संहिताओं को भी न सुना, न देखा, और न किसी विद्वान् से पढ़ा। इसीलिए नष्ट भ्रष्ट बुद्धि होकर ऊटपटांग वेदों की निन्दा करने लगे। दुष्ट वाममार्गियों की प्रमाणशून्य कपोलकल्पित भ्रष्ट टीकाओं को देख कर वेदों के विरोधी होकर अविद्यारूपी अगाध समुद्र में जा गिरे। बिना इन महापापी वाममार्गियों के भ्रष्ट वेदार्थ से विपरीत अशुद्ध व्याख्यान कौन करता? अत्यन्त शोक तो इन चारवाक आदि पर है जो कि बिना विचारे वेदों की निन्दा करने पर तत्पर हुए। तनिक तो अपनी बुद्धि से काम लेते। क्या करें बिचारे, उनमें इतनी विद्या ही नहीं थी जो सत्यासत्य का विचार कर सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन करते।

जो मांस खाना है यह भी उन्हीं वाममार्गी टीकाकारों की लीला है। इसलिए इनको राक्षस कहना उचित है। परन्तु वेदों में कहीं मांस का खाना नहीं लिखा। इसलिए मिथ्या बातों का पाप उन टीकाकारों को जिन्होने वेदों के जाने सुने बिना मनमानी निन्दा की है, निःसन्देह उनको लगेगा। सच तो यह है कि जिन्हों ने वेदों से विरोध किया और करते हैं और करेंगे, वे अवश्य अविद्यारूपी अन्धकार में पड़के सुख के बदले दारुण दुःख जितना पावें उतना ही न्यून है। इसलिए मनुष्यमात्र को वेदानुकूल चलना समुचित है।

जो वाममार्गियों ने मिथ्या कपोलकल्पना कर के वेदों के नाम से अपना प्रयोजन सिद्ध करना अर्थात् यथेष्ट मद्यपान, मांस खाने और परस्त्री गमन करने आदि दुष्ट कामों की प्रवृत्ति होने के अर्थ वेदों को कलंक लगाया, इन्हीं बातों को देख कर

चारवाक, बौद्ध तथा जैन लोग वेदों की निन्दा करने लगे और पृथक् एक वेदविरुद्ध अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक मत चला लिया। जो चारवाकादि वेदों का मूलार्थ विचारते तो झूठी टीकाओं को देख कर सत्य वेदोक्त मत से क्यों हाथ धो बैठते ? क्या करें विचारे " विनाशकाले विपरीतबुद्धि : " जब नष्ट भ्रष्ट होने का समय आता है तब मनुष्य की उलटी बुद्धि हो ज़ाती है।

बौद्ध मत समीक्षा

अब बौद्धमत के विषय में संक्षेप से लिखते हैं —

बौद्ध चार प्रकार के हैं — एक ' माध्यमिक ', दूसरा ' योगाचार ', तीसरा ' सौत्रान्तिक ' और चौथा ' वैभाषिक '।

" बुद्ध्या निवर्तते स बौद्ध: जो बुद्धि से सिद्ध हो अर्थात् जो 2 बात अपनी बुद्धि में आवे उस 2 को माने और जो 2 बुद्धि में न आवे उस 2 को नहीं माने।

इनमें से पहला " माध्यमिक " सर्व शून्य मानता है अर्थात् जितने पदार्थ हैं वे वे सब शून्य अर्थात् आदि में नहीं होते अन्त में नहीं रहते, मध्य में जो प्रतीत होता है वह भी प्रतीत समय में है पश्चात् शून्य हो जाता है, जैसे उत्पत्ति के पूर्व घट नहीं था, प्रध्वंस के पश्चात् नहीं रहता और घटज्ञान समय में भासता और पदार्थान्तिर में ज्ञान जाने से घटज्ञान नहीं रहता। इसलिए शून्य ही एक तत्त्व है।

दूसरा " योगाचार " जो बाह्य शून्य मानता है अर्थात् पदार्थ भीतर ज्ञान में भासते हैं, बाहर नहीं। जैसे घटज्ञान आत्मा में है तभी मनुष्य कहता है कि यह घट है। जो भीतर ज्ञान न हो तो नहीं कह सकता, ऐसा मानता है।

तीसरा " सौत्रान्तिक " जो बाहर अर्थ का अनुमान मानता है। क्योंकि बाहर कोई पदार्थ सांगोपांग प्रत्यक्ष नहीं होता।

किन्तु एक देश प्रत्यक्ष होने से शेष में अनुमान किया जाता है। इसका ऐसा मत है।

चौथा 'वैभाषिक' है। उसका मत है बाहर पदार्थ प्रत्यक्ष होता है भीतर नहीं। जैसे "अयं नीलो घटः" इस प्रतीति में नीलयुक्त घटाकृति बाहर प्रतीत होती है। यह ऐसा मानता है।

यद्यपि इनका आचार्य बुद्ध एक है तथापि शिष्यों के बुद्धि भेद से चार प्रकार की शाखा हो गई हैं।

इन पूर्वोक्त चारों में "माध्यमिक"—सबको क्षणिक मानता है अर्थात् क्षण २ में बुद्धि के परिणाम होने से जो पूर्व क्षण में ज्ञात वस्तु था वैसा ही दूसरे क्षण में नहीं रहता। इसलिए सबको क्षणिक मानना चाहिए।

दूसरा "योगाचार"— जो प्रवृत्ति है सो सब दुःख रूप है। क्योंकि प्राप्ति में सन्तुष्ट कोई भी नहीं रहता। एक की प्राप्ति में दूसरे की इच्छा बनी ही रहती है।

तीसरा "सौत्रान्तिक"— सब पदार्थ अपने २ लक्षणों से लक्षित होते हैं। जैसे गाय के चिन्हों से गाय और घोड़े के चिन्हों से घोड़ा ज्ञात होता है। वैसे लक्षण लक्ष्य में सदा रहते हैं।

चौथा "वैभाषिक"— शून्य ही को एक पदार्थ मानता है।

उत्तर— जो सब शून्य हो तो शून्य को जानने वाला शून्य नहीं हो सकता। और जो सब शून्य होवे तो शून्य को शून्य नहीं जान सके। इसलिए शून्य का ज्ञाता और ज्ञेय दो पदार्थ सिद्ध होते हैं। और जो योगाचार बाह्य शून्यत्व मानता है तो पर्वत इसके भीतर होना चाहिए। जो कहे पर्वत भीतर है तो उसके हृदय में पर्वत के समान अवकाश कहां है ? इसलिए बाहर पर्वत है और पर्वतज्ञान आत्मा में रहता है। सौत्रान्तिक किसी पदार्थ को प्रत्यक्ष

नहीं मानना तो वह आप स्वयं और उसका वचन भी अनुमेय होना चाहिए, प्रत्यक्ष नहीं। जो प्रत्यक्ष न हो तो "अयं घट:" यह प्रयोग भी न होना चाहिए। किन्तु "अयं घटैकदेश:" यह घट का एक देश है और एक देश का नाम घट नहीं किन्तु समुदाय का नाम घट है। "यह घट है" यह प्रत्यक्ष है, अनुमेय नहीं। क्योंकि सब अवयवों में अवयवी एक है। उसके प्रत्यक्ष होने से सब घट के अवयव भी प्रत्यक्ष होते हैं अर्थात् सावयव घट प्रत्यक्ष होता है। चौथा वैभाषिक बाह्य पदार्थों को प्रत्यक्ष मानता हैं यह भी ठीक नहीं। क्योंकि जहां ज्ञाता और ज्ञान होता है वहीं प्रत्यक्ष होता है। यद्यपि प्रत्यक्ष का विषय बाहर होता है, तदाकार ज्ञान आत्मा को होता है वैसे जो क्षणिक पदार्थ और उसका ज्ञान क्षणिक हो तो "प्रत्यभिज्ञा" अर्थात् वह बात की थी, ऐसा स्मरण न होना चाहिए। परन्तु पूर्वदृष्टश्रुत का स्मरण होता है। इसलिए क्षणिकवाद भी ठीक नहीं। जो सब दु:ख ही हो और सुख कुछ भी न हो तो सुख की अपेक्षा के विना दु:ख सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे रात्रि की अपेक्षा से दिन और दिन की अपेक्षा से रात्रि होती है। इसलिए सब दु:ख मानना ठीक नहीं।

जो सब संसार दु:ख रूप होता तो किसी जीव की प्रवृत्ति न होनी चाहिए। संसार में जीवों की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है। इस-लिए सब संसार दु:ख रूप नहीं हो सकता। किन्तु इसमें सुख दु:ख दोनों हैं। क्योंकि जीव सुख जानकर प्रवृत्त और दु:ख जान के निवृत्त होता है। संसार में धर्म, क्रिया, विद्या, सत्संगादि श्रेष्ठ व्यवहार सब सुखकारक हैं। इन को कोई भी विद्वान् दु:ख का लिंग नहीं मान सकता, बिना बौद्धों के अब बुद्धिमान् विचारशील पुरुष अवलोकन करके जान जाएंगे कि इनकी कैसी विद्या और कैसा मत है। इसको जैनी लोग भी मानते हैं।

जैनमत समीक्षा

अब इसके आगे केवल जैनमत के विषय में लिखा जाता है-

जैन लोग 'चित्' और 'अचित्' अर्थात् चेतन जड़ दो ही परतत्व मानते हैं। उन दोनों के विवेचन का नाम विवेक, जो 2 ग्रहण के योग्य है उस 2 का ग्रहण और जो 2 त्याग करने योग्य है, उसके त्याग करने वाले को विवेकी कहते हैं।

जैनी जीव के बिना दूसरा चेतन तत्व ईश्वर को नहीं मानते।

कोई भी अनादि सिद्ध ईश्वर नहीं, ऐसा बौद्ध जैन लोग मानते हैं।

प्रश्न- यह संसार अनादि अनन्त है न कभी इसकी उत्पत्ति हुई न कभी विनाश होता है।

समीक्षा- जो संयोग से उत्पन्न होता है वह अनादि और अनन्त कभी नहीं हो सकता। जगत् में जितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब संयोगज उत्पत्ति विनाश वाले देखे जाते हैं। पुनः जगत् उत्पन्न विनाश वाला क्यों नहीं ? इसलिए तुम्हारे तीर्थंकरों को जैन लोग सम्यक् ज्ञानी और परमेश्वर मानते हैं उनकी मिथ्या बातों के ये नमूने हैं—

दो इन्द्रिय वाले जीव अर्थात् एक उनका शरीर और एक मुख जो शंख कौड़ी और जूं आदि होते हैं। उनका देहमान अधिक से अधिक अड़तालीस कोश का होता है और उनका आयुमान अधिक से अधिक बारह वर्ष का होता है।

रत्नासार पृ. 150

समीक्षा- यहां बहुत ही भूल गया, क्योंकि इतने बड़े शरीर का आयु अधिक लिखता और अड़तालीस कोश की जूं जैनियों के शरीर में पड़ती होगी और उन्होने देखी भी होगी, और का भाग्य कहां जो इतनी बड़ी जूं देखे !!!

और देखो ! इनका अन्धाधुन्ध विच्छू वगाई, कसारीं और मक्खी एक योजन के शरींर वाले होते हैं। इनका आयुमान अधिक से अधिक छ; महीने का है। देखो भाई ! चार-2 कोश का विच्छू अन्य किसी ने न देखा होगा जो आठ मील तक का शरीर वाला विच्छू और मक्खी उन्हीं के घर में रहते होंगे और उन्होने देखे होंगे, अन्य किसी ने संसार में नहीं देखे होंगे। कभी ऐसे विच्छू जैनी को काटे तो उसका क्या होता होगा ?

जलचर मच्छी आदि के शरीर का मान एक सहस्र योजन अर्थात् 10000 कोश के हिसाब से करोड़ कोश का शरीर होता है और एक करोड़ 'पूर्व' वर्षो का इनका आयु होता है।

रत्नासार भाग पृ. 151

समीक्षा- वैसा स्थूल जलचर सिवाय जैनियों के अन्य किसी ने न देखा होगा। ऐसे बड़े-2 शरीर वाले जीव जैनी लोगों ने देखे होंगे, और मानते हैं और कोई बुद्धिमान् नहीं मान सकता। क्या यह महा झूठ बात नहीं कि जिसका कदापि सम्भव न हो सके ?

अब सुनिये भूमि के परिमाण को। (रत्नासार भाग पृ 152) इस तिरछे लोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं ! इन असंख्यात का प्रमाण अर्थात् जो अढ़ाई "सागरोपम" काल में जितना समय हो उतने द्वीप तथा समुद्र मानना। अब इस पृथिवी में "जम्बूद्वीप" प्रथम सब द्वीपों के बींच में हैं। इसका प्रमाण एक लाख योजन अर्थात् एक अरब है, उसका प्रमाण दो लाख योजन कोश का है अर्थात् दो अरब कोश का।

समीक्षक- सुनो भाई भूगोल विद्या के जानने वाले लोगो ! भूगोल के परिमाण करने में तुम भूले वा जैन ? जो जैन भूल गए हों तो तुम उनको समझाओ और जो तुम भूले हो तो उनसे समझ लेओ। थोड़ा विचार कर देखो तो यही निश्चय होता है कि

जैनियों के आचार्य और शिष्यों ने भूगोल खगोल और गणितविद्या कुछ भी नहीं पढ़ी थी। पढ़े होते तो महा असम्भव गपोड़ा क्यों मारते ? भला ऐसे अविद्वान् पुरुष जगत् को अकर्तृक और ईश्वर को न मानें इसमें क्या आश्चर्य है ? इसलिए जैनी लोग अपने पुस्तकों को किन्हीं विद्वान् अन्य मतस्थों को नहीं देते । क्योंकि जिनको ये लोग प्रामाणिक तीर्थंकरों के बनाए हुए सिद्धांत ग्रन्थ मानते हैं, उनमें इसी प्रकार की अविद्यायुक्त बातें भरी पड़ी हैं। इसलिए नहीं देखने देते। जो देवें तो पोल खुल जाये। इनके बिना जो कोई मनुष्य कुछ भी बुद्धि रखता होगा वह कदापि इस गपोड़ाध्याय को सत्य नहीं मान सकेगा।

प्रश्न— जो ईश्वर को जगत् का कर्ता मानते हो तो ईश्वर का कर्ता कौन है ?

उत्तर--कर्ता का कर्ता और कारण का कारण कोई भी नहीं हो सकता। क्योंकि प्रथम कर्ता और कारण के होने से ही कार्य होता है । जिसमें संयोग वियोग नहीं होता, जो प्रथम संयोग वियोग का कारण है उसका कर्ता या कारण किसी प्रकार नहीं हो सकता ।

प्रश्न — जीव निर्मल कभी नहीं था, किन्तु मलसहित है ।

उत्तर— जो कभी निर्मल नहीं था तो निर्मल भी कभी नहीं हो सकेगा। जैसे शुद्ध वस्त्र में पीछे से लगे हुए मैल को धोने से छुड़ा देते हैं, उसके स्वाभाविक श्वेत वर्ण को नहीं छुड़ा सकते, मैल फिर भी वस्त्र में लग जाता है, इसी प्रकार मुक्ति में भी लगेगा।

अब जैन लोग धर्म इस प्रकार मानते हैं—

अरे जीव ! एक ही जिन मत श्रीवीतरागभाषित धर्म संसार

सम्बन्धी जन्म जरा मरणादि दुःखों का हरणकर्ता है इसी प्रकार सुदेव और सुगुरु भी जैनमत वाले को जानना। इतर जो वीतराग ऋषभदेव से ले के महावीर पर्यन्त वीतराग देवों से भिन्न अन्य हरिहर, ब्रह्मादि कुदेव हैं उनकी अपने कल्याणार्थ जो जीव पूजा करते हैं, वे सब मनुष्य ठगाए गए हैं।

प्रकरण रत्नाकर भाग 2

इसका यह भावार्थ है कि जैनमत के सुदेव सुगुरु तथा सुधर्म को छोड़ के अन्य कुदेव कुगुरू तथा कुधर्म को सेवने से कुछ भी कल्याण नहीं होता।

समीक्षक-- अब विद्वानों को विचारना चाहिए कि कैसे निन्दा युक्त इनके धर्म के पुस्तक हैं।

जैन-- हे मनुष्य ! जो तू तप, चरित्र नहीं कर सकता, न सूत्र पढ़ सकता, न प्रकरणादि का विचार कर सकता और सुपात्रादि को दान दे नहीं सकता, तो भी जो तू देवता एक अरिहन्त ही हमारे आराधना के योग्य सुगुरु सुधर्म जैनमत में श्रद्धा रखना सर्वोत्तम बात और उद्धार का कारण है।

प्रकरण भाग 2

एक "परमती की स्तुति कभी न करना अर्थात् उनका गुण कीर्तन कभी न करना। दूसरा "उनको नमस्कार" अर्थात् वन्दना भी न करनी। तीसरा "आलपान" अर्थात् अन्य मत वालों के साथ थोड़ा बोलना। चौथा "संलपन" अर्थात् उनसे बार-2 न बोलना। पांचवा "उनको अन्न वस्त्रादि दान" अर्थात् इनको खाने पीने की वस्तु भी न देनी। छठा "गन्ध पुष्पादि दान" अन्य मत की प्रतिमा पूजन के लिए गन्ध पुष्पादि भी न देना। ये छः यतना अर्थात् इन छः प्रकार के कर्मों को जैन लोग कभी न करें।

समीक्षक — अब बुद्धिमानों को विचारना चाहिए कि इन जैनी लोगों की अन्य मत वाले मनुष्यों पर कितनी अदया, कुदृष्टि और द्वेष है। जब अन्य मतस्थ मनुष्यों पर इतनी अदया है तो फिर जैनियों को दयाहीन कहना संभव है। क्योंकि घर वालों की ही सेवा करना विशेष धर्म नहीं कहाता। उनके मत के मनुष्य उनके घर के समान हैं। इसलिए उनकी सेवा करते, अन्य मतस्थों की नहीं, फिर उनको दयावान् कौन बुद्धिमान् कह सकता है ?

जैन— जो जैन धर्म से विरुद्ध धर्म हैं वे सब मनुष्य को पापी करने वाले हैं। इसलिए किसी के अपने धर्म को न मान कर जैन धर्म को मानना ही श्रेष्ठ है।

प्रकरण० भा० २

समीक्षक— इससे यह सिद्ध होता है कि सबसे वैर, विरोध, निन्दा, ईर्ष्या आदि दुष्ट कर्मरूप सागर में डुबाने वाला जैन मार्ग है। जैसे जैनी लोग सबके निन्दक हैं वैसा कोई भी दूसरे मत वाला महानिन्दक और अधर्मी न होगा। क्या एक ओर से सबकी निन्दा और अपनी अति प्रशंसा करना शठ मनुष्यों की बातें नहीं हैं ? विवेकी लोग तो चाहे किसी के मत के हों अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा कहते हैं।

जैन— एक जिन मूर्तियों की पूजा सार और इससे भिन्न मार्गियों की मूर्तिपूजा असार है। जो जिन मार्ग की आज्ञा पालता है वह तत्त्वज्ञानी, जो नहीं पालता है वह तत्त्वज्ञानी नहीं।

समीक्षक— वाहजी ! क्या कहना !! क्या तुम्हारी मूर्ति पाषाणादि जड़ पदार्थों की नहीं जैसी कि वैष्णवादिकों की है ? जैसी तुम्हारी मूर्तिपूजा मिथ्या है वैसी ही मूर्तिपूजा वैष्णवादिकों की भी मिथ्या है। जो तुम तत्वज्ञानी बनते हो और अन्यों को अतत्व-

ज्ञानी बनाते हो, इससे विदित है कि तुम्हारे मत में तत्वज्ञान नहीं है।

प्रश्न— हमारी मूर्तियां वस्त्र आभूषणादि धारण नहीं करती इसलिए अच्छी हैं।

उत्तर— सबके सामने नंगी मूर्तियों का रहना और रखना पशुवत् लीला है।

प्रश्न— जैसे स्त्री का चित्र वा मूर्ति को देखने से कामोत्पत्ति होती है, वैसे साधु और योगियों की मूर्तियों को देखने से शुभगुण प्राप्त होते हैं ?

उत्तर— जो पाषाण मूर्तियों को देखने से शुभ परिणाम मानते हो तो उसके जड़त्वादि गुण भी तुम्हारे में आ जायेंगे। जब जड़ बुद्धि होगे तो सर्वथा नष्ट हो जाओगे। दूसरे जो उत्तम विद्वान् हैं उनके संग सेवा से छूटने से मूढ़ता भी अधिक होगी।

जैनों की मुक्ति का वर्णन

महावीर तीर्थंकर गौतम जी से कहते हैं कि ऊर्ध्वलोक में एक सिद्धशिला स्थान है। स्वर्गपुरी के ऊपर पैंतालीस लाख योजन लम्बी और उतनी ही पोली है तथा आठ योजन मोटी है। जैसे मोती का श्वेत हार वा गोदुग्ध है उससे भी उजली है। सोने के समान प्रकाशमान और स्फटिक से भी निर्मल है। वह सिद्धशिला चौदहवें लोक की शिखा पर है। और उस सिद्धशिला के ऊपर शिवपुरधाम, उसमें भी मुक्त पुरुष अधर रहते हैं। वहां जन्म मरणादि कोई दोष नहीं आते, सब कर्मों से छूट जाते हैं यह जैनियों की मुक्ति है।

रत्नसार भा० पृ० 23

समीक्षक — विचारना चाहिए कि जैसे अन्य मत में बैकुण्ठ, कैलाश, गोलोक, श्रीपुर, आदि पुराणो, चौथे आसमान में ईसाई, सातवें आसमान में मुसलमानों के मत में, मुक्ति के स्थान लिखे हैं, वैसे ही जैनियों की सिद्धशिला और शिवपुर भी है। यह जैनियों की मुक्ति भा एक प्रकार का बन्धन है। ये जैनी भी मुक्ति के विषय में भ्रम में फंसे हैं। यह सच है कि विना वेदों के यथार्थ अर्थबोध के मुक्ति के स्वरुप की कभी नहीं जान सकते।

जैन साधुओं के लक्षण

चमरी रखना और भिक्षा मांग के खाना, शिर के बाल लुञ्चित कर देना, श्वेत वस्त्र धारण करना, क्षमायुक्त रहना, किसी का संग न करना, ऐसे लक्षणयुक्त जैनियों के श्वेताम्बर, जिनको यति कहते हैं। दूसरे दिगम्बर अर्थात् वस्त्र धारण न करना, शिर के बाल उखाड़ डालना, पिच्छिका, एक ऊन के सूतों का झाड़ लगाने का साधन बगल में रखना, जो कोई भिक्षा दे तो हाथ में लेकर खा लेना, ये दिगम्बर दूसरे प्रकार के साधु होते हैं।

भिक्षा देने वाला गृहस्थ, जब भोजन कर चुके, उसके पश्चात् भोजन करें। ये जिनर्षि अर्थात् तीसरे प्रकार के साधु होते हैं।

दिगम्बरों का श्वेताम्बरों के साथ इतना ही भेद है कि दिगम्बर लोग स्त्री का संसर्ग नहीं करते और श्वेताम्बर करते हैं, इत्यादि बातों से मोक्ष को प्राप्त होते हैं। यह इनके साधुओं का भेद है। जैन लोगों का केशलुञ्चन सर्वत्र प्रसिद्ध है। और पांच मुष्टि लुन्चन करना इत्यादि भी लिखा है।

पांच मुष्टि लुञ्चन कर चारित्र ग्रहण किया अर्थात् पांच मूठी शिर के बाल उखाड़ के साधु हुआ।

विवेकसार भा० पृ० 216

समीक्षक — अब कहिए जैन लोगो ! तुम्हारा दया धर्म कहां रहा ? क्या यह हिंसा अर्थात् चाहे अपने हाथ से लुञ्चन करे, चाहे उसका गुरु करे वा अन्य कोई, परन्तु कितना बड़ा कष्ट उस जीव को होता होगा ? जीव को कष्ट देना ही हिंसा कहाती है।

विवेकसार संवत् 1633 के साल में श्वेताम्बरो में से ढूंढिया और ढूंढियों में से तेरहपन्थी आदि ढोंगी निकले हैं। ढूंढ़िये लोग पाषाणादि मूर्ति को नहीं मानते और वे भोजन स्नान को छोड़ सर्वदा पट्टी बांधे रहते हैं और जती आदि भी जब पुस्तक बांचते हैं तभी मुख पर पट्टी बांधते हैं अन्य समय नहीं।

जैनियों की असम्भव बातें

ऋषभदेव का शरीर पांच सौ धनुष लम्बा और चौरासी लाख 'पूर्व' वर्ष का आयु। अजितनाथ का चार सौ पचास धनुष परिमाण का शरीर और बहत्तर लाख 'पूर्व' वर्ष का आयु........।

रत्नासार भाग 1 पृष्ठ 166-167

समीक्षक— ये चौबीस तीर्थंकर जैनियों के मत चलाने वाले आचार्य और गुरु हैं। इन्हीं को जैनी लोग परमेश्वर मानते हैं। और ये सब मोक्ष को गए हैं। इसमें बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि इतने बड़े शरीर और इतना आयु मनुष्य देह का होना कभी संभव है? इस भूगोल में बहुत ही थोड़े मनुष्य बस सकते हैं। इन्हीं जैनियों के गपोड़ लेकर जो पुराणियों ने एक लाख दस-सहस्र और एक सहस्र-वर्ष का आयु लिखा सो भी सम्भव नहीं हो सकता, तो जैनियों का कथन संभव कैसे हो सकता है ?

अब और भी सुनो— कल्पभाष्य पृष्ठ 4- नागाकेत ने ग्राम की बराबर एक शिला अंगुली पर धर ली। कल्पभाष्य पृ. 35- महावीर ने अंगूठे से पृथिवी दबाई, उससे शेषनाग कम्प गया।

पृष्ठ 46- महावीर को सर्प ने काटा, रुधिर के बदले दूध निकला और वह सर्प आठवें स्वर्ग को गया। पृष्ठ 47- महावीर के पग पर खीर पकाई और पग न जले।

समीक्षक— अब देखिये इनकी मिथ्या बातें! एक मनुष्य ग्राम के बराबर पाषाण की शिला को अंगुली पर धर सकता है? और पृथिवी के ऊपर अंगूठे से दाबने से पृथिवी कभी दब सकती है? और जब शेषनाग ही नहीं तो कांपेगा कौन? भला शरीर के काटने से दूध निकलना किसी ने नहीं देखा, सिवाय इन्द्रजाल के दूसरी बात नहीं। उसको काटने वाला सर्प तो स्वर्ग में गया और महात्मा श्रीकृष्ण आदि तीसरे नरक को गए, यह कितनी मिथ्या बात है। जब महावीर के पग पर खीर पकाई तब उसके पग जल क्यों न गए?

अब ऐसी असंभव कहानी इनकी लिखें तो जैनियों के थोथे पोथों के सदृश बहुत बढ़ जाय। इसलिए अधिक नहीं लिखते अर्थात् थोड़ी सी इन जैनियों की बातें छोड़ के शेष सब मिथ्याजाल भरा है।

इनकी बहुत सी बातें गोलमाल हैं। कहाँ तक लिखें। किन्तु जल छान के पीना और सूक्ष्म जीवों पर नाममात्र दया करना, रात्रि को भोजन न करना, ये तीन बातें अच्छी हैं। बाकी जितना इनका कथन है सब असम्भवग्रस्त है। इतने ही लेख से बुद्धिमान् लोग बहुत सा जान लेंगे। थोड़ा सा यह दृष्टान्तमात्र लिखा है। बुद्धिमानों के सामने बहुत लिखना आवश्यक नहीं क्योंकि दिग्दर्शनवत् सम्पूर्ण आशय को बुद्धिमान् लोग जान ही लेते हैं।

इति द्वादश: समुल्लास: सम्पूर्ण:

अनुभूमिका - 3

जो यह बाइबल का मत है वह केवल ईसाइयों का है, सो नहीं, किन्तु इससे यहूदी आदि भी गृहीत होते हैं । आजकल बाइबल के मत के ईसाई मुख्य हो रहे हैं और यहूदी आदि गौण हैं । मुख्य के ग्रहण से गौण का ग्रहण हो जाता है । इससे यहूदियों का ग्रहण भी समझ लीजिए ।

इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत से हुए हैं, जो कि इनके मत में बड़े-2 पादरी हैं उन्होने किए हैं । उनमें से देवनागरी वा संस्कृत भाषान्तर देखकर मुझको बाइबल में बहुत सी शंका हुई हैं । उनमें से कुछ थोड़ी इस तेहरवें समुल्लास में सबके विचारार्थ लिखी हैं ।

यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिए है, न कि किसी को दुःख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ हो । इसका अभिप्राय उत्तर लेख में सब कोई समझ लेंगे कि यह पुस्तक कैसा है और इनका मत भी कैसा है ?

इस लेख से यही प्रयोजन है कि सब मनुष्य मात्र को देखना, सुनना, लिखना आदि करना सहज होगा और पक्षी प्रतिपक्षी होके विचार कर ईसाई मत का आन्दोलन सब कोई कर सकेंगे । इससे एक यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्म विषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्यासत्य मत और कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म सम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्तव्य कर्म का स्वीकार असत्य और अकर्तव्य कर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा ।

मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्यासत्य के निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है । जितना अपना पठित वा श्रुत है उतना निश्चय कर सकता है । यदि एक मत वाले दूसरे मत वाले के विषयों को जानें और अन्नय जानें तो यथावत् संवाद

नहीं हो सकता। किन्तु अज्ञानी किसी भ्रमरूप बाड़े में घिर जाते हैं। ऐसा न हो, इसलिए इस ग्रन्थ में प्रचरित सब मतों का विषय थोड़ा-2 लिखा है। इतने ही से शेष विषयों में अनुमान कर सकता है कि वे सच्चे हैं वा झूठे। जो-जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं वे तो सब में एक से हैं, झगड़ा झूठे विषयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो तो भी कुछ थोड़ा सा विवाद चलता है। यदि वादी प्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिए वाद परिवाद करे तो अवश्य निश्चय हो जाय। अब ईसाई मत विषयक थोड़ा सा लिखकर सबके सम्मुख स्थापित करता हूं, विचारये कि कैसा है?

॥ इत्यलम् ॥

देश में ईसाइयत आज भी फैल रही है। पिछड़ी जनता में सेवा के नाम पर उन्होने जो जाल फैलाया है, वह सभी के लिए गम्भीर चेतावनी है। समय की माँग है कि हम अज्ञान और अन्धविश्वास पर आधारित ईसाइयत के सत्य स्वरूप को समझ कर इसके विष से देश को बचाने का संकल्प लें।

—0—

प्राचीन धर्म पुस्तक (ओल्ड टेस्टामेन्ट) में ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनके पाठ से स्त्रियों और बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव हुए बिना न रहेगा। नग्न-कामक्रीड़ाओं की कहानियां सृष्टिक्रम, विद्या एवं विज्ञान से विपरीत बातें, अन्धविश्वास पूर्ण किस्से साम्प्रदायिक संकीर्णताओं और राग द्वेष से पूर्ण नियम, रूखे-सूखे रूढ़िवाद कर्मकाण्ड के ढकोसले पढ़-पढ़ कर क्या किसी का भला होगा? नहीं! कदापि नहीं!!

अथ त्रयोदशः समुल्लासः

कृश्चीनमत विषय

अब इसके आगे ईसाईयों के मत के विषय में लिखते हैं जिससे सबको विदित हो जाय कि इन का मत निर्दोष और इनकी बाइबल पुस्तक ईश्वरकृत है वा नहीं ?

प्रथम बाइबल के तौरेत का किषय लिखा जाता है—

1— आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा और पृथिवी बेडौल और सूनी थी। और गहिराव पर अन्धियारा था। और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था ॥

पर्व 1 आ. 1-2

समीक्षक— आरम्भ किसको कहते हो ?

ईसाई— सृष्टि के प्रथमोत्पत्ति को।

समीक्षक— क्या यही सृष्टि प्रथम हुई इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी ?

ईसाई— हम नहीं जानते, हुई थी वा नहीं ईश्वर जाने।

समीक्षक— जब नहीं जानते तो इस पुस्तक पर विश्वास क्यों किया कि जिससे सन्देह का निवारण नहीं हो सकता ? और इसी के भरोसे लोगों को उपदेश कर इस सन्देह से भरे हुए मत में क्यों फंसाते हो ? निः सन्देह सर्व-शंकानिवारण वेदमत का स्वीकार क्यों नहीं करते। जब तुम ईश्वर की सृष्टि का हाल नहीं जानते तो ईश्वर को कैसे जानते होगे ? आकाश किसको मानते हो ?

ईसाई— पोल और ऊपर को।

समीक्षक— पोल की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? क्योंकि यह

विभु पदार्थ और अति सूक्ष्म है। और ऊपर नीचे एक सा है जब आकाश नहीं सृजा था तब पोल वा आकाश था वा नहीं ? जो नहीं था तो ईश्वर, जगत् का कारण और जीव कहां रहते थे ? विना आकाश के कोई पदार्थ स्थित नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हारी बाइबल का कथन युक्त नहीं। ईश्वर बेडौल, उसका ज्ञान कर्म बेडौल होता है वा सब डौलवाला ?

ईसाई— डौलवाला होता है।

समीक्षक— तो यहां ईश्वर की बनाई पृथिवी बेडौल थी ऐसा क्यों लिखा ?

ईसाई— बेडौल का अर्थ यह है कि ऊंची नीची थी, बराबर नहीं थी।

समीक्षक— फिर बराबर किसने की ? और क्या अब भी ऊंची नीची नहीं है ? इसलिए ईश्वर का काम बेडौल नहीं हो सकता। क्योंकि वह सर्वज्ञ है, उसके काम में न भूल, न चूक कभी हो सकती है। और बाइबल में ईश्वर की सृष्टि बेडौल लिखी इसलिए यह पुस्तक ईश्वर कृत नहीं हो सकता। प्रथम ईश्वर का आत्मा क्या पदार्थ है ?

ईसाई— चेतन।

समीक्षक— वह साकार है वा निराकार तथा व्यापक है वा एकदेशी ?

ईसाई— निराकार, चेतन और व्यापक है। परन्तु किसी एक सनाई पर्वत, चौथा आसमान आदि स्थानों में विशेष करके रहता है।

समीक्षक— जो निराकार है तो उसको किसने देखा ? और व्यापक का जल पर डोलना कभी नहीं हो सकता। भला जब

ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था तब ईश्वर कहां था ? इससे यही सिद्ध होता है कि ईश्वर का शरीर कहीं अन्यत्र स्थित होगा, अथवा अपने कुछ आत्मा के एक टुकड़े को जल पर डुलाया होगा। जो ऐसा है तो विभु और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता। जो विभु नहीं तो जगत् की रचना, धारण, पालन और जीवों के कर्मों की व्यवस्था वा प्रलय कभी नहीं कर सकता। क्योंकि जिस पदार्थ का स्वरूप एकदेशी है उसके गुण, कर्म स्वभाव भी एकदेशी होते हैं। जो ऐसा हैं तो वह ईश्वर नहीं हो सकता। क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, अनन्तगुण कर्म स्वभाव-युक्त, सच्चिदानन्द स्वरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, अनादि, अनन्तादि लक्षणयुक्त वेदों में कहा है ; उसी को मानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा नहीं।

2— और ईश्वर नें कहा कि उजियाला होवे और उजियाला हो गया। और ईश्वर ने उजियाले को देखा कि अच्छा है।

पर्व. । आ. 3-4

समीक्षक— क्या ईश्वर की बात जड़ रूप उजियाले ने सुन ली ? जो सुनी हो तो इस समय भी सूर्य, दीप और अग्नि का प्रकाश हमारी तुम्हारी बात क्यों नहीं सुनता ? प्रकाश जड़ होता है, वह कभी किसी की बात नहीं सुन सकता। क्या जब ईश्वर ने उजियाले को देखा तभी जाना कि उजियाला अच्छा है ? पहले नहीं जानता था, जो जानता होता तो देख कर अच्छा क्यों कहता ? जो नहीं जानता था तो वह ईश्वर ही नहीं। इसलिए तुम्हारी बाइबल ईश्वरोक्त और उसमें कहा हुआ ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है।

3— तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें। तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया। उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया। उसने उन्हें

नर और नारी बनाया। और ईश्वर ने उन्हें आशीष दिया।

पर्व. । आ 26 - 28

समीक्षक— यदि आदम को ईश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया तो ईश्वर का स्वरूप पवित्र, ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षणयुक्त है, उस के सदृश आदम क्यों नहीं हुआ ? जो नहीं हुआ तो उसके स्वरूप में नहीं बना। और आदम को उत्पन्न किया तो ईश्वर ने अपने स्वरूप ही को उत्पत्ति वाला किया। पुनः वह अनित्य क्यों नहीं और आदम को उत्पन्न कहां से किया ?

ईसाई— मिट्टी से बनाया।

समीक्षक— मिट्टी कहां से बनाई ?

ईसाई— अपनी कुदरत अर्थात् सामर्थ्य से।

समीक्षक – ईश्वर का सामर्थ्य द्रब्य है वा गुण ? जो द्रब्य है तो ईश्वर से भिन्न दूसरा पदार्थ था। और जो गुण है तो गुण से द्रब्य कभी नहीं बन सकता। जो ईश्वर से जगत् बना होता तो ईश्वर के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश न होने से यही निश्चय है कि ईश्वर से नहीं बना। किन्तु जगत् के कारण अर्थात् परमाणु आदि नाम वाले जड़ से बना है। जैसी कि जगत् की उत्पत्ति वेदादि शास्त्रों में लिखी है वैसी ही मान लो, जिससे ईश्वर जगत् को बनाता है। जो आदम के भीतर का स्वरूप जीव और बाहर का मनुष्य के सदृश है तो वैसा ईश्वर का स्वरूप क्यों नहीं ? क्योंकि जब आदम ईश्वर के सदृश बना तो ईश्वर आदम के सदृश अवश्य होना चाहिए।

4— और परमेश्वर ने आदम को बड़ी नींद में डाला और वह सो गया, तब उसने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और

उसकी सन्ति मांस भर दिया और परमेश्वर ईश्वर ने आदम की उस पसली से एक नारी बनाई। और उसे आदम के पास लाया ॥
पर्व 2 आ० 21, 22

समीक्षक— जो ईश्वर ने आदम को धूलि से बनाया तो उसकी स्त्री को धूलि से क्यों नहीं बनाया ? और जो नारी को हड्डी से बनाया तो आदम को हड्डी से क्यों नहीं बनाया ? और जैसे नर से निकलने से नारी नाम हुआ तो नारी से नर नाम भी होना चाहिए। और उनमें परस्पर प्रेम भी रहे। जैसे स्त्री के साथ पुरुष प्रेम करे वैसे पुरुष के साथ स्त्री भी प्रेम करे। देखो विद्वान् लोगो ! ईश्वर की कैसी पदार्थ विद्या अर्थात् "फिलासफी" चिलकती है ! जो आदम की एक पसली निकाल कर नारी बनाई तो सब मनुष्यों की एक पसली कम क्यों नहीं होती ? और स्त्री के शरीर में एक पसली होनी चाहिए क्योंकि वह एक पसली से बनी हुई है। क्या जिस सामग्री से सब जगत् बनाया उस सामग्री से स्त्री का शरीर नहीं बन सकता था ? इसलिए यह बाइबल का सृष्टिक्रम सृष्टिविद्या से विरुद्ध है।

5— अब सर्प भूमि के हर एक पशु से जिसे परमेश्वर ईश्वर ने बनाया था धूर्त था। और उसने स्त्री से कहा, क्या निश्चय ईश्वर ने कहा है कि तुम इस बारी के हर एक पेड़ से न खाना। और स्त्री ने सर्प से कहा कि हम तो इस बारी के पेड़ों का फल खाते हैं। परन्तु उस पेड़ का फल जो बारी के बीच में है, ईश्वर ने कहा कि तुम उसे न खाना और न छूना, न हो कि मर जाओ। तब सर्प ने स्त्री से कहा कि तुम निश्चय न मरोगे। क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसे खाओगे तुम्हारी आंखे खुल जायंगी और तुम भले बुरे को पहिचान में ईश्वर के समान हो जाओगे। और

जब स्त्री ने देखा, वह पेड़ खाने में सुस्वाद और दृष्टि में सुन्दर और बुद्धि देने योग्य है तो उसके फल में से लिया और खाया और अपने पति को भी दिया और उसने खाया। तब उन दोनों की आंखें खुल गईं और वे जान गए कि हम नंगे हैं।

तौरेत उत्पत्ति पर्व 3 आ० 1-7

समीक्षक – जो ईसाईयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो इस धूर्त सर्प अर्थात् शैतान को क्यों बनाता ? और जो बनाया तो वही ईश्वर अपराध का भागी है। क्योंकि जो वह उस को दुष्ट न बनाता तो वह दुष्टता क्यों करता ? और वह पूर्व जन्म नहीं मानता तो बिना अपराध उसको पापी क्यों बनाया ? और सच पूछो तो वह सर्प नहीं था किन्तु मनुष्य था। क्योंकि जो मनुष्य न होता तो मनुष्य की भाषा क्योंकर बोल सकता। और जो आप झूठा और दूसरे को झूठ में चलावे उसको शैतान कहना चाहिए। सो यहां शैतान सत्यवादी और इससे उसने उस स्त्री को नहीं बहकाया किन्तु सच कहा। और ईश्वर ने आदम और हव्वा से झूठ कहा कि इसके खाने से तुम मर जाओगे। जब वह पेड़ ज्ञान-दाता और अमर करने वाला था तो उसके फल खाने से क्यों वर्जा और जो वर्जा तो वह ईश्वर झूठा और बहकाने वाला ठहरा। क्योंकि उस वृक्ष के फल मनुष्यों को ज्ञान और सुखकारक थे, अज्ञान और मृत्युकारक नहीं। जब ईश्वर ने फल खाने से वर्जा तो वृक्ष को उत्पत्ति किस लिए की थी। जो अपने लिए की तो क्या आप अज्ञानी और मृत्युधर्म वाला था। और जो दूसरों के लिए बनाया तो फल खाने में अपराध कुछ भी न हुआ। और आजकल कोई भी वृक्ष ज्ञानकारक और मृत्युनिवारक देखने में नहीं आता।

6– और ईश्वर देखा कि आदम की दुष्टता पृथिवी पर बहुत हुई

और उनके मन की चिन्ता और भावना प्रतिदिन केवल बुरी होती है। तब आदमी को पृथिवी पर उत्पन्न करने से परमेश्वर पछताया और उसे अति शोक हुआ। तब परमेश्वर ने कहा कि आदमी को जिसे मैंने उत्पन्न किया आदमी से लेके पशुओं और रेंगवैयों को और आकाश के पक्षियों को पृथ्वी पर से नष्ट करूंगा क्योंकि उन्हें बनाने से मैं पछताता हूं।

तौ. पर्व 6 आ. 4-7

समीक्षक—वह ईश्वर ही नहीं जो सर्वज्ञ न हो, न भविष्यत् की बात जाने, वह जीव है। क्या जब सृष्टि की थी तब आगे मनुष्य दुष्ट होंगे ऐसा नहीं जानता था? और पछताना, अति शोकादि होना, भूल से काम करके पश्चाताप करना आदि ईसाइयों के ईश्वर में घट सकता है कि ईसाइयों का ईश्वर पूर्ण विद्वान् योगी भी नहीं था नहीं तो शांति और विज्ञान से अति शोकादि से पृथक् हो सकता था। भला पशु-पक्षी भी दुष्ट हो गए। यदि वह ईश्वर सर्वज्ञ होता तो ऐसा विषादी क्यों होता? इसलिए यह न ईश्वर और न यह ईश्वरकृत पुस्तक हो सकता हैं। जैसे वेदोक्त परमेश्वर सब पाप, क्लेश, दुःख शोकादि से रहित "सच्चिदानन्द स्वरूप" है उसको ईसाई लोग मानते व अब भी मानें तो अपने मनुष्य जन्म को सफल कर सकें।

7—और नूह ने परमेश्वर के लिए एक-एक वेदी बनाई और सारे पवित्र पशु और हर एक पवित्र पंछियों में से लिए और होम की भेंट उस वेदी पर चढ़ाई और परमेश्वर ने सुगन्ध सूंघा और परमेश्वर ने अपने मन में कहा कि आदमी के लिए मैं पृथिवी को फिर कभी स्राप न दूंगा। इस कारण कि आदमी के मन की भावना उसकी लड़काई से बुरी है और जिस रीति से मैंने सारे

जीवधारियों को मारा, फिर कभी न मारूंगा।

तौ. पर्व 8 आ० 20, 21

समीक्षक— वेदी के बनाने, होम करने के लेख से यही सिद्ध होता है कि ये बातें वेदों से बाइबल में गई हैं। क्या परमेश्वर के नाक भी है कि जिस से सुगन्ध सूंघा ? क्या यह ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् अल्पज्ञ नहीं ? कि कभी स्राप देता है और कभी पछताता है, कभी कहता है स्राप न दूंगा, पहले दिया था और फिर भी देगा, प्रथम सबको मार डाला और कहता है कि कभी न मारुंगा !! ये बातें सब लड़कपने की सी हैं ईश्वर की नहीं और न किसी विद्वान् की क्योंकि विद्वान् की भी बात और प्रतिज्ञा स्थिर होती है।

8— सारी पृथिवी पर एक ही बोली और एक ही भाषा थी। फिर उन्होंने कहा कि आओ हम एक नगर और एक गुम्मट जिसकी चोटी स्वर्ग लौं पहुंचे अपने लिए बनावें और अपना नाम करें, न हो कि हम सारी पृथिवी पर छिन्न-भिन्न हो जायें। तब ईश्वर उस नगर और गुम्मट को जिसे आदम के सन्तान बनाते थे, देखने को उतरा। तब परमेश्वर ने कहा कि देखो ये लोग एक ही हैं और उन सबकी एक ही बोली है अब वे ऐसा 2 कुछ करने लगे सो वे जिस पर मन लगावेंगे उससे अलग न किए जाएंगे। आओ हम उतरें और वहां उनकी भाषा को गड़बड़ावें जिससे कि एक दूसरे की बोली न समझें। तब परमेश्वर ने उन्हें वहां से सारी पृथिवी पर छिन्न-भिन्न किया और वे उस नगर के बनाने से अलग रहे।

तौ. पर्व ॥ आ० 1, 4-8

समीक्षक— जब सारी पृथिवी पर एक भाषा और बोली होगी उस समय सब मनुष्य को परस्पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ होगा। परन्तु क्या किया जाए यह ईसाइयों के ईर्ष्यक ईश्वर ने

सबकी भाषा गड़बड़ा के सबका सत्यानाश किया। उसने यह बड़ा अपराध किया ! क्या यह शैतान के काम से भी बुरा काम नहीं है? और इससे भी विदित होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सनाई पहाड़ आदि पर रहता था, और जीवों की उन्नति भी नहीं चाहता था। यह बिना एक अविद्वान् के ईश्वर की बात और यह ईश्वरोक्त पुस्तक क्यों कर हो सकता है ?

9— अबिरहाम झुण्ड की ओर दौड़ा गया और एक अच्छा कोमल बछड़ा लेके दास को दिया और उसने भी उसे सिद्ध करने में चटक किया। और उसने मक्खन और दूध और वह बछड़ा जो पकाया था लिया और उनके आगे धरा और आप उनके पास पेड़ तले खड़ा रहा और उन्होंने खाया।

तौ. पर्व 18 आ. 7, 8

समीक्षक— अब देखिये ! सज्जन लोगो ! जिनका ईश्वर बछड़े का मांस खावे उसके उपासक गाय, बछड़े आदि पशुओं को क्यों छोड़ें ? जिनको कुछ दया नहीं और मांस के खाने में आतुर रहे वह बिना हिंसक मनुष्य के ईश्वर कभी हो सकता है ? और ईश्वर के साथ दो मनुष्य न जानें कौन थे ? इससे विदित होता है कि जंगली मनुष्यों की एक मण्डली थी। उनका जो प्रधान मनुष्य था उसका नाम बाइबल में ईश्वर रखा होगा। इन्हीं बातों से बुद्धिमान् लोग इनके पुस्तक को ईश्वरकृत नहीं मान सकते और न ऐसे को ईश्वर समझते हैं।

10-- तब परमेश्वर ने समूद अमर पर गन्धक और आग परमेश्वर की ओर से वर्षाया। और उन नगरों को सारे चौगान को और नगरों के सारे निवासियों को और जो कुछ भूमि पर उगता

था उलट दिया।

तौ. उत्पत्ति पर्व 19 आ० 32, 34-36

समीक्षक– अब यह भी लीला बाइबल के ईश्वर की देखिये ! कि जिसको बालक आदि पर भी कुछ दया न आई। क्या वे सब ही अपराधी थे जो सबको भूमि उल्टा के दबा मारा ? यह बात न्याय, दया और विवेक से विरुद्ध है। जिनका ईश्वर ऐसा काम करे उनके उपासक क्यों न करें ?

11- सो आप हमारी समाधिन में से चुन के एक में अपने मृतक को गाड़िये जिससे आप अपने मृतक को गाड़ें।

तौ. उत्पत्ति पर्व 23 आ० 6

समीक्षक– मुर्दों को गाड़ने से संसार की बड़ी हानि होती है क्योंकि वह सड़ के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है।

प्रश्न- देखो ! जिससे प्रीति हो उसको जलाना अच्छी बात नहीं और गाड़ना जैसा कि उसको सुला देना है इसलिए गाड़ना अच्छा है।

उत्तर- जो मृतक से प्रीति करते हो तो अपने घर में क्यों नहीं रखते ? और गाड़ते भी क्यों हो ? जिस जीवात्मा से प्रीति थी वह निकल गया, अब दुर्गन्धमय मिट्टी से क्या प्रीति ? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवी में क्यों गाड़ते हो ? क्योंकि किसी से कोई कहे कि तुझ को भूमि में गाड़ देवें तो वह सुन कर प्रसन्न कभी नहीं होता। उसके मुख, आंख और शरीर पर धूल, पत्थर ईंट, चूना डालना छाती पर पत्थर रखना कौन सी प्रीति का काम है ? और सन्दूक में डाल के गाड़ने से बहुत दुर्गन्ध होकर पृथिवी से निकल, वायु को बिगाड़ कर दारुण रोगोत्पत्ति करता है।

दूसरा एक मुर्दे के लिए कम से कम 6 हाथ लम्बी 4 हाथ चौड़ी भूमि चाहिए। इसी हिसाब से सौ हजार वा लाख अथवा क्रोड़ों मनुष्यों के लिए कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है न वह खेत, न बगीचा, और न बसने के काम की रहती है। इसलिए सबसे बुरा गाड़ना है। उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना है। क्योंकि उसको जलजन्तु उसी समय चीर फाड़ के खा लेते हैं। परन्तु जो कुछ हाड़ वा मल जल में रहेगा वह सड़ कर जगत् को दुःखदायक होगा। उससे कुछ एक थोड़ा बुरा जंगल में छोड़ना है। क्योंकि उसको मांसाहारी पशु पक्षी लूंच के खाएंगे। तथापि जो उसके हाड़ की मज्जा और मल सड़ कर दुर्गन्ध करेगा उतना जगत् का अनुपकार होगा। और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है। क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जायेंगे।

प्रश्न— जलाने से भी दुर्गन्ध होता है।

उत्तर— जो अविधि से जलावें तो थोड़ा सा होता है। परन्तु गाड़ने आदि से बहुत कम होता है। और जो विधिपूर्वक जैसा कि वेद में लिखा है, मुर्दे के तीन हाथ गहरी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी, पांच हाथ लम्बी, तले में डेढ़ बीता अर्थात् चढ़ा उतार वेदी खोदकर शरीर के बराबर घी उसमें एक सेर में रत्ती भर कस्तूरी, मासा भर केसर डाल न्यून से न्यून आध मन चन्दन अधिक चाहें जितना लें, अगर, तगर, कपूर आदि और पलाश आदि की लकड़ियों को वेदी में जमा उस पर मुर्दा रख के पुनः चारों ओर ऊपर वेदी के मुख से एक २ बीता तक भर के उस घी की आहुति देकर जलाना चाहिए। इस प्रकार से दाह करें तो कुछ भी दुर्गन्ध न हो किन्तु इसी का नाम अन्त्येष्टि, नरमेध, पुरुषमेध यज्ञ है। और जो दरिद्र हो तो बीस सेर से कम घी चिता में न डाले चाहे वह भीख

मांगने वा जाति वाले के देने अथवा राज से मिलने से प्राप्त हो, परन्तु उसी प्रकार दाह करे। और जो घृत आदि किसी प्रकार न मिल सके तथापि गाड़ने आदि से केवल लकड़ी से भी मृतक का जलाना उत्तम है। क्योंकि एक विश्वा भर भूमि में अथवा एक वेदी में लाखों क्रोड़ों मृतक जल सकते हैं। भूमि भी गाड़ने के समान अधिक नहीं बिगड़ती। और कबर के देखने से भय भी होता है। इस से गाड़ना सर्वथा निषिद्ध है।

12— और यअकूब अपने मार्ग चला गया और ईश्वर के दूत उससे और मिले। और यअकूब ने उन्हें देख के कहा कि यह ईश्वर की सेना है।

तौ. उत्पत्ति प. 32 आ. 1,2

समीक्षक— अब ईसाईयों के ईश्वर के मनुष्य होने में कुछ भी सन्देह नहीं रहा। क्योंकि सेना भी रखता है। जब सेना हुई तब शस्त्र भी होंगे। और जहां तहां चढ़ाई करके लड़ाई भी करता होगा, नहीं तो सेना रखने का क्या प्रयोजन है?

13— सो अब लड़कों में से हर एक बेटे को और हर एक स्त्री को जो पुरुष से संयुक्त हुई हो प्राण से मारो। परन्तु वे बेटियां जो पुरुष से संयुक्त नहीं हुई हैं उन्हें अपने लिए जीती रखो।

तौ. गिनती. पर्व 31 आ० 17,18

समीक्षक— वाह जी! मूसा पैगम्बर और तुम्हारा ईश्वर धन्य है! कि जो स्त्री, बालक, वृद्ध और पशु आदि की हत्या करने से भी अलग न रहे। और इस से स्पष्ट निश्चित होता है कि मूसा विषयी था। क्योंकि जो विषयी न होता तो अक्षतयोनि अर्थात् पुरुषों से समागम न की हुई कन्याओं को अपने लिए क्यों मंगवाता वा

उनको ऐसो निर्दय वा विषयीपन की आज्ञा क्यों देता ?

14— जब कोई अध्यक्ष पाप करे। तब वह बकरी का निसखोट नर मेम्ना अपनी भेंट के लिए लावे। और उसे परमेश्वर के आगे बलि करे यह पाप की भेंट है।

तौ. लै. प. 4 आ० 22-24

समीक्षक— वाह जी ! वाह !! यदि ऐसा है तो इनके अध्यक्ष अर्थात् न्यायाधीश तथा सेनापति आदि पाप करने से क्यों डरते होंगे ? आप तो यथेष्ट पाप करें और प्रायश्चित के बदले में गाय, बछिया, बकरे आदि के प्राण लेवें। तभी तो ईसाई लोग किसी पशु या पक्षी के प्राण लेने में शंकित नहीं होते। सुनो ईसाई लोगो ! अब तो इस जंगली मत को छोड़ के सुसभ्य धर्ममय वेदमत को स्वीकार करो कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो।

15— यीशू ख्रीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ, उसकी माता मरियम की युसफ से मंगनी हुई थी, पर उनके इकट्ठा होने के पहिले ही वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मा से गर्भवती है देखो परमेश्वर के एक दूत ने स्वप्न में उसे दर्शन दे कहा, हे दाऊद के सन्तान यूसफ ! तू अपनी स्त्री मरियम को यहां लाने से मत डर क्योंकि उसको जो गर्भ रहा है सो पवित्रात्मा से है।

इं० पर्व 1 आ० 18, 20

समीक्षक - इन बातों को कोई विद्वान् नहीं मान सकता कि जो प्रत्यक्षादि प्रमाण और सृष्टिक्रम से विरुद्ध है। इन बातों का मूर्ख मनुष्य जंगलियों का काम है, सभ्य विद्वानों का नहीं। भला जो परमेश्वर का नियम है उसको कोई तोड़ सकता है ? जो परमेश्वर भी नियम को उलटा पलटा करे तो उसकी आज्ञा को कोई न माने। और वह भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम है। ऐसे तो जिस२

कुमारिका के गर्भ रह जाय तब सब कोई ऐसे कह सकते हैं कि उसमें गर्भ का रहना ईश्वर की ओर से है। और झूठ मूठ कह दे कि परमेश्वर के दूत ने मुझको स्वप्न में कह दिया है कि यह गर्भ परमात्मा की ओर से है। जैसा यह असम्भव प्रपञ्च रचा है वैसा ही सूर्य से कुन्ती का गर्भवती होना भी पुराणों में असम्भव लिखा है। ऐसी २ बातों को आंख के अन्धे गाँठ के पूरे लोग मान कर भ्रमजाल में गिरते हैं। यह ऐसी बात हुई होगी किसी पुरुष के समागम होने से गर्भवती मरियम हुई होगी। उसने वा किसी दूसरे ने ऐसी असम्भव बात उड़ा दी होगी कि इसमें गर्भ ईश्वर की ओर से है।

16— तब आत्मा यीशु को जंगल में ले गया कि शैतान से उसकी परीक्षा की जाय। वह चालीस दिन और चालीस रात उपवास करके पीछे भूखा हुआ तब परीक्षा करने हारे ने कहा कि जो तू ईश्वर का पुत्र है तो कह दे कि ये पत्थर रोटियां बन जावें।

इं. पर्व 4 आ० 1-3

समीक्षक— इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं। क्योंकि जो सर्वज्ञ होता तो उसकी परीक्षा शैतान से क्यों कराता, स्वयं जान लेता। भला किसी ईसाई को आजकल चालीस रात चालीस दिन भूखा रखें तो कभी बच सकेगा? और इससे यह सिद्ध हुआ कि न वह ईश्वर का बेटा और न कुछ उसमें करामात अर्थात् सिद्धि थी। नहीं तो शैतान के सामने पत्थर की रोटियां क्यों न बना देता? और आप भूखा क्यों रहता? और सिद्धान्त यह है कि जो परमेश्वर ने पत्थर बनाए हैं उनको रोटी कोई भी नहीं बना सकता और ईश्वर भी पूर्वकृत नियम को उलटा नहीं कर सकता, क्योंकि वह सर्वज्ञ और उसके सब काम विना भूल चूक के हैं।

17— हमारी दिन भर की रोटी आज हमें दे। अपने लिए पृथिवी पर धन का संचय मत करो।

इं. म. प. 6 आ० 11, 19

समीक्षक— इससे विदित होता है कि जिस समय ईसा का जन्म हुआ है, उस समय लोग जंगली और दरिद्र थे, तथा ईसा भी वैसा ही दरिद्र था। इसी से तो दिन भर की रोटी की प्राप्ति के लिए ईश्वर की प्रार्थना करता और सिखलाता है। जब ऐसा है तो ईसाई लोग धन संचय क्यों करते हैं? उनको चाहिए कि ईसा के वचन से विरुद्ध न चल कर सब दान पुण्य करके दीन हो जायें।

18— हर एक जो मुझसे हे प्रभु २ कहता है स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा।

इं. म. प, 7 आ० 21

समीक्षक— अब बिचारिये बड़े २ पादरी विशप साहेब और कृश्चीन लोग जो यह ईसा का वचन सत्य है ऐसा समझें, तो ईसा को प्रभु अर्थात् ईश्वर कभी न कहें। यदि इस बात को न मानेंगे तो पाप से कभी नहीं बच सकेंगे।

19— तब यीशु ने उनसे कहा तुम्हारे पास कितनी रोटियां हैं, उन्होंने कहा सात और छोटी मछलियाँ तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी तब उसने उन सात रोटियों को और मछ-लियों को धन्य मान के तोड़ा और अपने शिष्यों को दिया सो सब खा के तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे उनके सात टोकरे भरे उठाये जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकों को छोड़ चार सहस्र पुरुष थे।

इं. म. प: 15 आ० 34 - 39

समीक्षक— अब देखिए! क्या यह आजकल के झूठे सिद्धों और इन्द्रजालों आदि के समान छल की बात नहीं है। उन रोटियों

ये अन्य रोटियां कहां से आ गईं ? यदि ईसा में ऐसी सिद्धियां होतीं तो आप भूखा हुआ गूलर के फल खाने को क्यों भटका करता था, अपने लिए मिट्टी पानी और पत्थर आदि से मोहन भोग रोटियां क्यों न बना लीं ? ये सब बातें लड़कों के खेलपन की हैं। जैसे कितने ही साधु वैरागी ऐसी छल की बातें करके भोले मनुष्यों को ठगते हैं, वैसे ही ये भी हैं।

20— मैं तुमसे सच कहता हूं धनवानों को स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कठिन होगा। फिर भी मैं तुम से कहता हूं कि ईश्वर के राज्य में धनवान् के प्रवेश करने से ऊंट का सुई के नाके में से जाना सहज है। इं. म. प. 19 आ० 23, 24

समीक्षक— इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा दरिद्र था। धनवान् लोग उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे। इसलिए यह लिखा होगा। परन्तु यह बात सच नहीं। क्योंकि धनाढ्यों और दरिद्रों में अच्छे बुरे होते हैं। जो कोई अच्छा करे वह अच्छा, और जो बुरा करे वह बुरा फल पाता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वर का राज्य किसी एक देश में मानता था, सर्वत्र नहीं। जब ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं। जो ईश्वर है उसका राज्य सर्वत्र है। पुनः उसमें प्रवेश करेगा वा न करेगा यह कहना केवल अविद्या की बात है और इससे यह भी आया कि जितने ईसाई धनाढ्य हैं क्या वे सब नरक में ही जायेंगे ? और दरिद्र सब स्वर्ग में जायेंगे ? भला तनिक सा विचार तो ईसामसीह करते कि जितनी सामग्री धनाढ्यों के पास होती है उतनी दरिद्रों के पास नहीं। यदि धनाढ्य लोग विवेक से धर्ममार्ग में व्यय करें तो दरिद्र नीच गति में पड़े रहें, और धनाढ्य उत्तम गति को प्राप्त हो सकते हैं।

21— और जैसे बड़ी बयार से हिलाये जाने पर गूलर के वृक्ष से उसके कच्चे गूलर झड़ते हैं तैसे आकाश के तारे पृथिवी पर गिर पड़े और आकाश पत्र की नाईं जो लपेटा जाता है अलग हो गया।

यो. प्र. प. 6 आ० 13, 14

समीक्षक— अब देखिए योहन भविष्यद्वक्ता ने जब विद्या नहीं है तभी तो ऐसी अण्डबण्ड कथा गाई। भला तारे सब भूगोल हैं एक पृथिवी पर कैसे गिर सकते हैं ? और सूर्यादि का आकर्षण उनको इधर उधर क्यों आने जाने देगा ? और क्या आकाश को चटाई के समान समझता है ? यह आकाश साकार पदार्थ नहीं है जिसको कोई लपेटे वा इकट्ठा कर सके। इसलिए योहन आदि सब जंगली मनुष्य थे। उनको इन बातों की क्या खबर ?

22— और घुड़चढ़ों की सेनाओं की संख्या बीस करोड़ थी।

यो० प्र. प. 9 आ० 16

समीक्षक— भला इतने घोड़े स्वर्ग में कहां ठहरते, कहां चरते, कहां रहते और कितनी लीद करते थे ? और उसका दुर्गन्ध भी स्वर्ग में कितना हुआ होगा ? बस ऐसे स्वर्ग, ऐसे ईश्वर और ऐसे मत के लिए हम सब आर्यों ने तिलाञ्जलि दे दी है। ऐसा बखेड़ा ईसाइयों के शिर पर से भी सर्वशक्तिमान् की कृपा से दूर हो जाय तो बहुत अच्छा हो।

अब कहां तक लिखें इनकी बाईबल में लाखों बातें खण्डनीय हैं। यह तो थोड़ा सा चिह्नमात्र ईसाइयों की बाइबल पुस्तक का दिखलाया है। इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे। थोड़ी सी बातों को छोड़ शेष सब झूठ भरा है। जैसे झूठ के संग से सत्य भी शुद्ध नहीं रहता वैसा ही बाइबल पुस्तक भी माननीय नहीं हो सकता। किन्तु वह सत्य तो वेदों के स्वीकार में गृहीत होता ही है।

इति त्रयोदशः समुल्लासः सम्पूर्ण

अनुभूमिका - 4

जो यह चौदहवां समुल्लास मुसलमानों के मत विषय में लिखा है, सो केवल कुरान के अभिप्राय से, अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं। क्योंकि मुसलमान क़ुरान पर ही पूरा - 2 विश्वास रखते हैं। यद्यपि फिरके होने के कारण किसी शब्द अर्थ आदि विषय में विरुद्ध बात है तथापि कुरान पर सब ऐकमत्य हैं। जो कुरान अर्बी भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है। उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्यभाषान्तर कराके पश्चात् अर्बी के बड़े - 2 विद्वानों से शुद्ध करवा के लिखा गया है। यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमाओं का पहिले खण्डन करे, पश्चात् इस विषय पर लिखे।

यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिए सब मतों के विषयों का थोड़ा - 2 ज्ञान होवे। इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें। सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो वह न माने वा माने। किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता। यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जान कर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें। और हठियों का हठ, दुराग्रह न्यून करें करावें। क्योंकि पक्षपात से क्या २ अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं।

सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंग जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहि: है। इससे जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उसको

सज्जन लोग विदित कर देंगे। तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायगा। क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिए किया गया है न कि इनको बढ़ाने के अर्थ। क्योंकि एक दूसरे को हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुंचाना हमारा मुख्य कर्म है। विचार कर इष्ट का ग्रहण अनिष्ट का परित्याग कीजिए।

— इत्यनुभूमिका

सत्यार्थ प्रकाश के आलोचनात्मक समुल्लासों से सभी मतों ने लाभ उठाया है। इन मतों की व्याख्याएं महर्षि की आलोचना के पश्चात् कुछ की कुछ हो गई हैं। ऋषि की युक्तियों का प्रभाव उनके जीवन काल में ही सुदूर तक फैलने लगा था। सर सैयद अहमद — जिनके जीवनकाल में ही मुसलमान मौलवियों ने कुफर के फतवे लगाए — आज वर्तमान मुस्लिम समाज के एक सर्वोच्च सुधारक समझे जाते हैं। वे महर्षि के निकटस्थ लोगों में से एक थे। वह प्रचलित मुस्लिम मान्यताओं से सन्तुष्ट न थे। अतः उन्होंने कुरान शरीफ की एक नई व्याख्या लिखी। इसका मुकाबला अन्य पूर्ववर्ती व्याख्याओं से करो। स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैसे सत्यार्थ प्रकाश के आक्षेपों से कुरानवी मान्यताओं को सुरक्षित करने का प्रयत्न किया गया है।

★

सत्य ज्ञान का सूर्य उगा है,
उदय हुआ है स्वर्णविहान।
रह न सकेगा आर्य देश में,
मुस्लिम मत का अज्ञान॥

★

अथ चतुर्दशः समुल्लासः

यवनमत विषय

1 — आरम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करने वाला दयालु।

मंजिल 1, सिपारा 1, सूरत 1

समीक्षक — मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि यह कुरान खुदा का कहा है, परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इसका बनाने वाला कोई दूसरा है। क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो "आरम्भ साथ नाम अल्लाह के" ऐसा न कहता। किन्तु "आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के" ऐसा कहता। यदि मनुष्यों को शिक्षा करता है कि तुम ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं। क्योंकि इससे पाप का आरम्भ भी खुदा के नाम से होकर उसका नाम भी दूषित हो जायगा। जो वह क्षमा और दया करनेहारा है तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिलवा कर मरवा के मांस खाने की आज्ञा क्यों दी? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाए हुए नहीं हैं? और यह भी कहता था कि "परमेश्वर के नाम पर अच्छी बातों का आरम्भ" बुरी बातों का नहीं। इस कथन में गोलमाल है। क्या चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि अधर्म का भी आरम्भ परमेश्वर के नाम पर किया जाये? इसी से देख लो कसाई आदि मुसलमान गाय आदि के गले काटने में भी "बिस्मिलाह" इस वचन को पढ़ते हैं। जो यही इस का पूर्वोक्त अर्थ है तो बुराइयों का आरम्भ भी परमेश्वर के नाम पर करते हैं। और मुसलमानों का "खुदा" दयालु भी न रहेगा। क्योंकि उसकी दया उस परमेश्वर पर न रही।

2— सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते हैं जो परवरदिगार अर्थात् पालन करनेहारा है सब संसार का। क्षमा करने वाला दयालु है ॥

मं. 1 सि. 1 सूरतल्फतिहा 1,2

समीक्षक— जो कुरान का खुदा संसार का पालन करनेहारा होता और सब पर क्षमा और दया करता होता तो अन्य मतवाले और पशु आदि को भी मुसलमानों के हाथ से मरवाने का हुक्म न देता। जो क्षमा करनेहारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा?

3— जो तुम उस वस्तु से सन्देह में हो जो हमने अपने पैगम्बर के ऊपर उतारी तो उस जैसी एक सूरत ले आओ और साक्षियों अपने को पुकारो अल्लाह के विना तुम सच्चे हो जो तुम ॥ और कभी न करोगे तो उस आग से डरो कि जिसका ईंधन मनुष्य है और काफिरों के वास्ते पत्थर तैयार किए गए हैं।

समीक्षक— भला यह कोई बात है कि उसके सदृश कोई सूरत न बने? क्या अकबर बादशाह के समय में मौलवी फैजी ने विना नुक्ते का कुरान नहीं बना लिया था! वह कौन सी दोजख की आग है? क्या इस आग से न डरना चाहिए? इसका भी ईंधन जो कुछ पड़े सब है। जैसे कुरान में लिखा है कि काफिरों के वास्ते पत्थर तैयार किए गए हैं तो वैसे पुराणों में लिखा है कि म्लेच्छों के लिए घोर नरक बना है! अब कहिए किसकी बात सच्ची मानी जाय? अपने २ वचन से दोनों नरकगामी होते हैं। इसलिए इन सबका झगड़ा झूठा है। किन्तु जो धार्मिक हैं वे सुख और जो पापी हैं वे सब मतों में दुःख पावेंगे।

4— और आनन्द का सन्देसा दे उन लोगो को कि ईमान लाए और काम किए अच्छे यह कि उनके वास्ते बिहिश्ते हैं जिनके नीचे

से चलती हैं नहरें जब इनमें से मेवों के भोजन दिये जावेंगे तब कहेंगे कि वह वो वस्तु हैं जो हमें पहिले इससे दिये गए थे और उनके लिए पवित्र बीवियां सदैव वहां रहने वाली हैं।

मं० 1 सि. 1 सू. 2 आ. 25

समीक्षक— भला यह कुरान का बहिश्त संसार से कौन सी उत्तम बात वाला है ? क्योंकि जो पदार्थ संसार में हैं वे ही मुसलमानों के स्वर्ग में हैं। और इतना विशेष है कि यहां जैसे पुरुष जन्मते मरते और आते जाते हैं, उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं। किन्तु यहां की स्त्रियां सदा नहीं रहती और वहां बीवियां अर्थात् उत्तम स्त्रियां सदा काल रहती हैं। तो जब तक कयामत की रात न आवेगी तब तक उन विचारियों के दिन कैसे कटते होंगे ? हां जो खुदा की उन पर कृपा होती होगी ! और खुदा के ही आश्रय समय काटती होंगी तो ठीक है। क्योंकि यह मुसलमानों का स्वर्ग गोकुलिये गुसाइयों के गोलोक और मन्दिर के सदृश दीखता है। क्योंकि वहां स्त्रियों का मान्य बहुत, पुरुषों का नहीं। वैसे ही खुदा के घर में स्त्रियों का मान्य अधिक और उन पर खुदा का प्रेम भी बहुत है। उन पुरुषों पर नहीं। क्योंकि बीवियों को खुदा ने बहिश्त में सदा रखा और पुरुषों को नहीं। वे बीवियां बिना खुदा की मर्जी स्वर्ग में कैसे ठहर सकतीं ? जो यह बात ऐसी ही हो तो खुदा स्त्रियों में फंस जाय ?

5— उस दिन से डरो कि जब कोई जीव किसी जीव से भरोसा न रखेगा न उसकी सिफारिश स्वीकार की जावेगी न उससे बदला लिया जावेगा और न वे सहाय पावेंगे।

मं. 1 सि. 1 सू. नू आ. 48

समीक्षक — क्या वर्तमान दिनों में न डरें ? बुराई करने में सब दिन डरना चाहिए। जब सिफारिश न मानी जावेगी तो फिर पैगम्बर की गवाही वा सिफारिश से खुदा स्वर्ग देगा यह बात क्योंकर सच हो सकेगी ? क्या खुदा बहिश्त वालों ही का सहायक है दोज़ख वालों का नहीं ? यदि ऐसा है तो खुदा पक्षपाती है।

6 — इस तरह खुदा मुर्दों को जिलाता है और तुमको अपनी निशानियां दिखलाता है कि तुम समझो।

मं. 1 सि. 1 सू. 2 आ. 73

समीक्षक — क्या मुर्दों को खुदा जिलाता था तो अब क्यों नहीं जिलाता ? क्या कयामत की रात तक कबरों में पड़े रहेंगे ? आज़कल दौड़ा सुपुर्द है ? क्या इतनी ही ईश्वर की निशानियां हैं ? क्या संसार में जो विविध रचना विशेष प्रत्यक्ष दीखती हैं ये निशानियां कम हैं ?

7 — और कहो कि क्षमा मांगते हैं हम, क्षमा करेंगे तुम्हारे पाप और अधिक भलाई करने वालों के।

मं. 1 सि. 1 सू. 2 आ. 58

समीक्षक — भला यह खुदा का उपदेश सब को पापी बनाने वाला है वा नहीं ? क्योंकि जब पाप क्षमा होने का आश्रय मनुष्यों को मिलता है तब पापों से नहीं डरता। इस लिए ऐसा कहने वाला खुदा और यह खुदा का बनाया हुआ पुस्तक नहीं हो सकता। क्योंकि वह न्यायकारी है अन्याय कभी नहीं करता। और पाप क्षमा करने में अन्यायकारी हो जाता है। किन्तु यथापराध दण्ड ही देने में न्यायकारी हो सकता है।

8 — जो आसमान और भूमि का उत्पन्न करने वाला है जब वो कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उसको कुछ करना पड़ता है।

किन्तु उसे कहता है कि हो जा बस हो जाता है।

मं. 1 सि. 1 सू. 2 आ. 117

समीक्षक— भला खुदा ने हुक्म दिया कि हो जा तो हुक्म किसने सुना ? और किसको सुनाया ? और कौन बन गया ? किस कारण से बनाया ? जब यह लिखते हैं कि सृष्टि के पूर्व सिवाय खुदा के कोई भी दूसरी वस्तु न थी तो यह संसार कहां से आया ? विना कारण के कोई भी कार्य नहीं होता तो इतना बड़ा जगत् कारण के विना कहां से हुआ ? यह बात केवल लड़कपन की है।

9— जो लोग अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं उनके लिए मत कहो कि ये मृतक हैं किन्तु वे जीवित हैं।

मं. 1 सि. 2 सू. 2 आ० 154

समीक्षक— भला ईश्वर के मार्ग में मरने मारने की क्या आवश्यकता है ? यह क्यों नहीं कहते हो कि यह बात अपने मतलब सिद्ध करने के लिए है कि यह लोभ देंगे तो लोग खूब लड़ेंगे, अपना विजय होगा, मारने से न डरेंगे, लूट मार कराने से ऐश्वर्य प्राप्त होगा, पश्चात् विषयानन्द करेंगे। इत्यादि स्वप्रयोजन के लिए यह विपरीत व्यवहार किया है।

10— अल्लाह के मार्ग में लड़ो उनसे जो तुमसे लड़ते हैं। मार डालो तुम उनको जहां तुम पाओ। क़तल से कुफ्र बुरा है। यहां तक उनसे लड़ो कि कुफ्र न रहे और होवे दीन अल्लाह का। उन्होंने जितनी ज़ियादती करी तुम पर उतनी ही तुम उनके साथ करो।

मं. 1 सि. 2 सू. 2 आ० 190-194

समीक्षक— जो कुरान में ऐसी बातें न होतीं तो मुसलमान लोग इतना बड़ा अपराध जो कि अन्य मत वालों पर किया है न

करते। और विना अपराधियों को मारना उन पर बड़ा पाप है। जो मुसलमान के मत का ग्रहण न करना है उसको कुफ्र कहते हैं। अर्थात् कुफ्र से कतल को मुसलमान लोग अच्छा मानते हैं अर्थात् जो हमारे दीन को न मानेगा उसको हम कतल करेंगे, सो करते ही आए। मजहब पर लड़ते २ आप ही राज्यादि से नष्ट हो गए। और उनका मन अन्य मत वालों पर अति कठोर रहता है। क्या चोरो का बदला चोरी है? कि जितना अपराध हमारा चोर आदि चोरी करें क्या हम भी चोरो करें? यह सर्वथा अन्याय की बात है, क्या कोई अज्ञानी हमको गालियां दे क्या हम भी उमे गाली देवें! यह बात न ईश्वर की और ईश्वर के भक्त विद्वान् की और न ईश्वरोक्त पुस्तक की हो सकती है। यह तो केबल स्वार्थी ज्ञानरहित मनुष्यों की है।

11 — अल्लाह सूर्य को पूर्व से लाता है बस तू पश्चिम से ले आ बस जो काफिर हैरान हुआ था निश्चय अल्लाह पापियों को मार्ग नहीं दिखलाता।

मं. 1 सि· 3 सू. 2 आ० 258

समीक्षक— देखिए यह अविद्या की बात! सूर्य न पूर्व से पश्चिम और न पश्चिम से पूर्व कभी आता जाता है। वह तो अपनी परिधि में घूमता रहता है। इससे निश्चित जाना जाता है कि कुरान के कर्त्ता को न खगोल और न भूगोल विद्या आती थी। जो पापियों को मार्ग नहीं बतलाता तो पुण्यात्माओं के लिए भी मुसलमानों के खुदा की आवश्यकता नहीं। क्योंकि धर्मात्मा तो धर्म मार्ग में ही होते हैं। मार्ग तो धर्म से भूले हुए मनुष्यों को बतलाना होता है। सो कर्त्तव्य के न करने से कुरान के कर्त्ता की बड़ी भूल है।

12— निश्चय अल्लाह को ओर से दीन इसलाम है।

मं. 1 सि. 3 सू. 3 आ० 18

समीक्षक— क्या अल्लाह मुसलमानों का ही है औरों का नहीं। क्या तेरहसौ वर्षों के पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं। इसी से यह कुरान ईश्वर का बनाया तो नहीं किन्तु किसी पक्षपाती का बनाया है।

13— ऐ ईमानवालो! संतोष करो परस्पर थामे रखो और लड़ाई में लगे रहो अल्लाह से डरो कि तुम घुटकारा पाओ।

मं. 1 सि. 4 सू. 3 आ० 200

समीक्षक— यह कुरान का खुदा और पैगम्बर दोनों लड़ाई-बाज़ थे। जो लड़ाई की आज्ञा देता है वह शान्तिभंग करने वाला होता है। क्या नाम मात्र खुदा से डरने से छुटकारा पाया जाता है? वा अधर्मयुक्त लड़ाई आदि से डरने से। जो प्रथम पक्ष है तो डरना न डरना बराबर, और जो द्वितीय पक्ष है तो ठीक है।

14— और शिक्षा प्रकट होने के पीछे जिसने रसूल से विरोध किया और मुसलमानों से विरुद्ध पक्ष किया अवश्य हम उसको दोज़ख में भेजेंगे।

मं. 1 सि. 5 सू. 4 आ० 115

समीक्षक — अब देखिए खुदा और रसूल की पक्षपात की बातें। मुहम्मद साहब आदि समझते थे कि जो खुदा के नाम से ऐसी हम न लिखेंगे तो अपना मजहब न बढ़ेगा, और पदार्थ न मिलेंगे, आनन्द भोग न होगा। इसी से विदित होता है कि वे अपने मतलब करने में पूरे थे और अन्य के प्रयोजन बिगाड़ने में। इससे ये अनाप्त थे। इनकी बात का प्रमाण आप्त विद्वानों के सामने कभी नहीं हो सकता।

15— और अल्लाह को अच्छा उधार दो अवश्य मैं तुम्हारी बुराई दूर करुंगा और तुम्हें बहिश्तों में भेजूंगा।

मं० 2 सि० 6 सू० 5 आ० 12

समीक्षक — वाह जी ! मुसलमानों के खुदा के घर में कुछ भी धन विशेष नहीं रहा होगा। जो विशेष होता तो उधार क्यों मांगता ? और क्यों बहकाता कि तुम्हारी बुराई छुड़ा के तुमको स्वर्ग में भेजूंगा ? यहां विदित होता है कि खुदा के नाम से मुहम्मद साहब ने अपना मतलब साधा है।

16— निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है जिस ने आसमानों और पृथिवी को छः दिन में उत्पन्न किया फिर करार पकड़ा अर्श पर। दीनता से अपने मालिक को पुकारो।

मं० 2 सि० 8 सू० 7 आ० 54, 55

समीक्षक — भला जो छः दिन में जगत् को बनावे (अर्श) अर्थात् ऊपर के आकाश में सिंहासन पर आराम करे वह ईश्वर सर्वशक्तिमान् और व्यापक कभी हो सकता है ? इसके न होने से वह खुदा भी नहीं कहा सकता। क्या तुम्हारा खुदा बधिर है जो पुकारने से सुनता है ? ये सब बातें अनीश्वरकृत हैं। इससे कुरान ईश्वरकृत नहीं हो सकता। यदि छः दिनों में जगत् बनाया, सातवें दिन अर्श पर आराम किया तो थक भी गया होगा। और अब तक सोता है वा जागा है ? यदि जागता है तो अब कुछ काम करता है वा निकम्मा सैल सपट्टा और ऐश करता फिरता है।

17— और लड़ो उनसे यहां तक कि न रहे फ़ितना अर्थात् बल काफिरों का और होवे दीन तमाम वास्ते अल्लाह के। और जानो तुम यह कि जो कुछ तुम लूटो किसी वस्तु से निश्चय वास्ते अल्लाह के है पांचवां हिस्सा उसका और वास्ते रसूल के।

मं० 2 सि० 9 सू० 8 आ० 39, 41

समीक्षक — ऐसे अन्याय से लड़ने वाला मुसलमानों के खुदा से भिन्न शान्तिभंगकर्ता दूसरा कौन होगा? अब देखिए यह

मजहब, कि अल्लाह और रसूल के वास्ते सब जगत् को लूटना लुटवाना लुटेरों का काम नहीं है ? और लूट के माल में खुदा का हिस्सेदार बनना जानो डाकू बनना है। और ऐसे लुटेरों का पक्षपाती बनना खुदा अपनी खुदाई में बट्टा लगाता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसा पुस्तक, ऐसा खुदा और ऐसा पैगम्बर संसार में ऐसी उपाधि और शान्ति भंग करके मनुष्यों को दुःख देने के लिए कहां से आया ? जो ऐसे 2 मत जगत् में प्रचलित न होते तो सब जगत् आनन्द में बना रहता।

18 — फिर निश्चय तुम दिन कयामत के उठाये जाओगे।

मं० 4 सि० 18 सू० 23 आ० 16

समीक्षक — कयामत तक मुर्दे कबर में रहेंगे वा किसी अन्य जगह ? जो उन्हीं में रहेंगे तो सड़े हुए दुर्गन्धरूप शरीर में रह कर पुण्यात्मा दुःख भोग करेंगे ? यह अन्याय है। और दुर्गन्ध अधिक होकर रोगोत्पत्ति करने से खुदा और मुसलमान पापभागी होंगे।

19 — और जब आया ईसा साथ प्रमाण प्रत्यक्ष के।

मं० 6 सि० 25 सू० 43 आ० 63

समीक्षक — यदि ईसा भी भेजा हुआ खुदा का है तो उसके उपदेश से विरुद्ध कुरान खुदा ने क्यों बनाया ? और कुरान से विरुद्ध अञ्जील है। इसीलिए ये किताबें ईश्वरकृत नहीं हैं।

20 — ऐ नबी ! झगड़ा कर काफिरों और गुप्त शत्रुओं से और सख्ती कर ऊपर उनके।

मं० 7 सि० 28 सू० 66 आ० 9

समीक्षक — देखिए मुसलमानों के खुदा की लीला। अन्य मत वालों से लड़ने के लिए पैगम्बर और मुसलमानों को उचकाता है। इसीलिए मुसलमान लोग उपद्रव करने में प्रवृत्त रहते हैं।

परमात्मा मुसलमानों पर कृपादृष्टि करें जिससे ये लोग उपद्रव करना छोड़ के सब से मित्रता से वर्तें।

21— इकट्ठा किया जावेगा सूर्य और चांद।

मं. 7 सि. 29 सू. 75 आ. 9

समीक्षक— भला सूर्य और चांद कभी इकट्ठे हो सकते हैं? देखिए यह कितनी बेसमझ की बात है। और सूर्य चन्द्र ही के इकट्ठे करने में क्या प्रयोजन था? अन्य सब लोगों को इकट्ठे न करने में क्या युक्ति है? ऐसी २ असम्भव बातें परमेश्वरकृत कभी हो सकती हैं? विना अविद्वानों के अन्य किसी विद्वान् की भी नहीं होतीं।

22— जब कि सूर्य लपेटा जावे। और जब कि तारे गदले हो जावें॥ और जब कि पहाड़ चलाये जावें। और जब आसमान की खाल उतारी जावे।

मं. 7 सि. 30 सू. 81 आ० 1-3, 11

समीक्षक— यह बड़ी बेसमझ की बात है कि गोल सूर्यलोक लपेटा जावेगा? और तारे गदले क्योंकर हो सकेंगे? और पहाड़ जड़ होने से कैसे चलेंगे? और आकाश को क्या पशु समझा कि उसकी खाल निकाली जावेगी? यह बड़ी ही बेसमझ और जंगलीपन की बात है।

अब इस कुरान के विषय को लिखके बुद्धिमानों के सम्मुख स्थापित करता हूं कि यह पुस्तक कैसा है? मुझसे पूछो तो यह किताब न ईश्वर, न विद्वान् की बनाई और न विद्या की हो सकती है। यह तो बहुत थोड़ा सा दोष प्रकट किया। इसलिए कि लोग धोखे में पड़ कर अपना जन्म व्यर्थ न गमावें जो कुछ इसमें थोड़ा सा सत्य है वह वेदादिविद्या पुस्तकों के अनुकूल होने से, जैसे मुझको

ग्राह्य है वैसे अन्य भी मजहब के हठ और पक्षपात रहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है। इसके बिना जो कुछ इसमें है वह सब अविद्या भ्रमजाल और मनुष्य के आत्मा को पशुवत् बनाकर शान्तिभंग कराके उपद्रव मचा मनुष्यों में विद्रोह फैला परस्पर दुःखोन्नति करने वाला विषय है। और पुनरुक्त दोष का तो कुरान जानो भण्डार ही है। परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सबसे सब प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मतमतान्तरों का दोष पक्ष-पात रहित होकर प्रकाशित करता हूँ इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट मेल होकर आनन्द में एक मन होके सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो।

हम तो यही मानने हैं कि सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शभ गुण सब मतों में अच्छे हैं बाकी बाद-विवाद, ईर्ष्या, द्वेष, मिथ्याभाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं। यदि तुमको सत्यमत ग्रहण की इच्छा हो तो वैदिक मत को ग्रहण करो।

✱ इति चतुर्दशः समुल्लासः सम्पूर्णः ✱

खुदा के बन्दों को देखकर,
खुदा से मुन्किर हुई है दुनिया।
जिस खुदा के ऐसे हैं बन्दे,
वह कोई अच्छा खुदा नहीं है॥

शिकवा कैसा ?

आइना चेहरे का हर दाग दिखा देता है!
उसकी फितरत का तकाजा है यह शिकवा कैसा?
आप सत्यार्थ प्रकाश की आलोचना से क्षुब्ध न हों!
अपने चेहरे को ही धो डालिए गुस्सा कैसा?

॥ ओ३म् ॥

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्म से लेकर जैमिनिमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूँ, सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल से सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मत्तमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त में प्रचरित मतों में से किसी एक का मत का आग्रही होता। किन्तु जो २ आर्यावर्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चालचलन हैं उनका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूँ। क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः है।

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे।

अब मैं जिन २ पदार्थों को जैसा २ मानता हूँ उनका वर्णन संक्षेप से यहां करता हूँ कि जिनका विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने २ प्रकरण में कर दिया है।

1— प्रथम "ईश्वर" जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूँ।

2— चारों "वेदों" (विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूँ। वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिनका प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप से स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं, वैसे चारों वेद हैं। और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अंग, छः उपांग, चार उपवेद और ग्यारह सौ सत्ताईस वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाए ग्रन्थ हैं, उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ।

3— जो पक्षपात रहित न्यायाचरण, सत्यभाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा, वेदों से अविरुद्ध है उसको "धर्म" और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण, मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग, वेदविरुद्ध है, उसको "अधर्म" मानता हूँ।

4— जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त, अल्पज्ञ, नित्य है, उसी को जीव मानता हूँ।

5—जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं। अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था,

न है, न होगा, इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक, उपास्य उपासक, और पिता पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ।

6— अनादि पदार्थ तीन हैं। एक ईश्वर, द्वितीय ज़ीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् ज़गत् का कारक। इन्हीं को नित्य भी कहते हैं जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं।

7— सृष्टि उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नानारूप बनना।

8— "सृष्टि का प्रयोजन" यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टि-निमित्त गुण,कर्म,स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किस लिए हैं? उसने कहा देखने के लिए। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है, और जीवो के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी।

9— "बन्ध" सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्त से है जो जो पाप कर्म ईश्वर-भिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फल करने वाले हैं। इसीलिए यह "बन्ध" है कि जिसकी इच्छा नहीं, और भोगना पड़ता है।

10— "मुक्ति" अर्थात् सर्व दुःखों से छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना।

11— "मुक्ति के साधन" ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।

12— "अर्थ" वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको अनर्थ कहते हैं।

13— "काम" वह है कि जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय।

14— "वर्णाश्रम" गुणकर्मों की योग्यता से मानता हूँ।

15— "राजा" उसी को कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित न्यायधर्म का सेवी, प्रजाओं में पितृवत् वर्ते और उनको पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे।

16— "प्रजा" उसको कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करके पक्षपात रहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्ते।

17— जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे, अन्यायकारियों को हटाये और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सबका सुख चाहे सो "न्यायकारी" है। उसको मैं भी ठीक मानता हूँ।

18— "देव" विद्वानों को और अविद्वानों को "असुर" पापियों को "राक्षस" अनाचारियों को "पिशाच" मानता हूँ।

19 —उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्माजन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना "देवपूजा" कहाती है। इससे विपरीत अदेवपूजा। इनकी मूर्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जड़मूर्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूँ।

20—"शिक्षा" जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटे उसको "शिक्षा" कहते है।

21—"पुराण" जो ब्रह्मादि के बनाए ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं, उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूँ, अन्य भागवतादि को नहीं।

22— "तीर्थ" जिससे दुःख सागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण

विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं उन्हीं को "तीर्थ" समझता हूँ इतर जलस्थलादि को नहीं।

23— "पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा" इसलिए है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं। इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।

24— "मनुष्य" को सबसे यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि लाभ में वर्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्तना बुरा समझता हूँ।

25— "संस्कार" उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे। वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है। इसको कर्त्तव्य समझता हूँ। और दाह के पश्चात् मृतक के लिए कुछ भी न करना चाहिए।

26— "यज्ञ" उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथा-योग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणों को दान अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, औषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उसको उत्तम समझता हूँ।

27— जो सांगोपांग वेदविद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह "आचार्य" कहाता है।

28— "शिष्य" उसको कहते हैं कि जो सत्यशिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करने वाला है।

29 – "गुरु" माता पिता और जो सत्य को ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे, वह 'गुरु' कहाता है।

30— "शिष्टाचार" जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्याग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण

असत्य का परित्याग करना है, यही शिष्टाचार और जो इसको करता है वह "शिष्ट" कहाता है।

31— "आप्त" जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सबके सुख के लिए प्रयत्न करता है उसी को "आप्त" कहता हूँ।

32— "परोपकार" जिससे सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़े उसके करने को परोपकार कहता हूँ।

33— "स्वर्ग" नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

34— "नरक" जो दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

35— शरीर के संयोग का नाम "जन्म" और वियोग मात्र को "मृत्यु" कहते हैं।

36— "स्तुति" गुण कीर्तन श्रवण और ज्ञान होना इसका फल प्रीति आदि होते हैं।

37— "प्रार्थना" अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिए ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता हैं।

38— "उपासना" जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना। ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्यापक जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है। इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

39— "सगुणनिर्गुणस्तुति प्रार्थनोपासना" जो २ गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो २ गुण नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना "सगुणनिर्गुणस्तुति" शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा

और दोष छुड़ाने के लिए परमात्मा का सहाय चाहना " सगुण-निर्गुण प्रार्थना " और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मान कर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना " सुगुणनिर्गुणोपासना " कहाती है।

ये संक्षेप में स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। जो 2 बात सबके सामने माननीय है उनको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है, ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूं।

समाप्तो ऽयं ग्रन्थः

आत्म निवेदन

मदनानन्द वानप्रस्थ आश्रम द्वारा प्रकाशित पुस्तकें आर्थिक लाभ, आय या व्यापार की दृष्टि से नहीं प्रकाशित की जातीं अपितु केवल वैदिक धर्म के प्रचार की भावना से ही यह सारा कार्य किया जाता है। न ही लेखक को और न ही प्रकाशक को किसी प्रकार के आर्थिक लाभ की इच्छा है। केवल धर्म प्रचार और मानवता को ऊपर उठाना ही हमारा मुख्य उद्देश्य है। अतः पुस्तकों का मूल्य इसी भावना से न्यून से न्यून रखा जाता है। फिर भी यदि कभी बचत हो जाय तो वह भी इसी प्रचार कार्य में लगा दी जाती है। सभी दानी महानुभावों से प्रार्थना है कि वे सरल, रोचक एवं अनुभव के आधार पर लिखी गई पुस्तकों के प्रकाशन हेतु सहयोग करें। वस्तुतः धर्म प्रचार के लिए दिया गया दान ही सर्वोत्तम दान है।

—पथिक

आभार प्रदर्शन

सर्व श्री संजीव मक्कड़	101/-
नरेश कुमार जुनेजा	101/-
उमेश कुक्कड़ एडवोकेट	101/-
चौ. शिव चन्द	100/-
गुप्तदान	100/-
कश्मीरी लाल नागपाल	50/-
मुरारी लाल भुसरी	50/-
राम दर्शन गांधी	50/-
आयाराम	50/-
किशोर चन्द पुंछी	50/-
फुटकर	48/-
सर्व श्री सतीश कुमार सेतिया	31
जसराज नागपाल	31/-
दिजय कुमार सेतिया	21/-
विद्यासागर भुसरी	21/-
केवल कृष्ण ग्रोवर	21/-
हरदयाल राय छाबड़ा	21/-
प्रवीन कुमार	21/-
पंकज मोहन गोकलानी	21/-
मोहन लाल सेठी	21/-
श्रीमती कृष्णा देवी कुक्कड़	20/-
गुप्तदान	20×2=40/-

हमारी अभिलाषा

हमारी तीव्रतम अभिलाषा है कि प्रत्येक मनुष्य तक "सत्यार्थ प्रकाश" का पवित्र सन्देश पहुंचे। इसके प्रकाश से प्रत्येक मनुष्य की आत्मा ज्योतित हो और नरक बनी धरती स्वर्ग बन जाए।

★—★—★

संसार के सभी विचारक सत्य ज्ञान "वेद" की विचारधारा को हृदयंगम कर धरती पर सुख, शान्ति और आनन्द का स्रोत प्रवाहित करने में समर्थ हों।

आर्य समाज के नियम

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्याय-कारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

★★★